Library
NAINI TAL
दुर्गालाल मुनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल
Class no. 891.3
Book no. M3017
Reg no. 2868
G. L. SAH

ROS. (MAIN
885
Specialists in
Knitting W
MAINE

गंगा-पुस्तकमाला का २०२वाँ पुष्प

गुदड़ी का लाल

[सामाजिक उपन्यास]

लेखक

श्रीपं० मदनमोहनलाल दीक्षित

[संसार-सेवा, बात की चोट, अनुचरी या सहचरी, मोहनमाला, निर्जला एकादशी, परिवर्तन, क्रांतिकारी, उलट-फेर, मिट्टी के माधौ आदि उपन्यासों के रचयिता]

मिलने का पता—

गंगा-ग्रंथागार

३६, गौतम बुद्ध-मार्ग

लखनऊ

सं० २००८ वि०] पहली बार [मूल्य ३॥)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

अन्य प्राप्ति-स्थान—

१. राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ-टोली, पटना
२. भारती-भाषा-भवन, चर्खेवालाँ, दिल्ली
३. प्रयाग-ग्रंथागार, ४०, क्रास्थवेट रोड, प्रयाग

नोट—इनके अलावा हमारी सब पुस्तकें हिंदुस्थान-भर के प्रधान बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं। जिन बुकसेलरों के यहाँ न

सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन

Durga Sah Municipal Library,
Nainital
दुर्गासाह म्युनिसिपल लाइब्रेरी
नैनीताल
Class No, (विभाग ..... 891.3 .....
Book No, (पुस्तक) ..... M 30 G .....
Received On. ..... July 1951 .....

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

प्रेमोपहार:

चार शब्द

यदि उपन्यास पढ़ने के बाद मस्तिष्क में सद्विचारों की छाप न रह गई, तो लेखक, प्रकाशक और पाठक का श्रम व्यर्थ गया। किसी भी पुस्तक को पढ़कर हमें कुछ मिलना चाहिए। किसी विद्वान् ने लिखा है—"अधिकांश पुस्तकें ऐसी होती हैं, जिन्हें उलट-पलट-कर रख दिया जाता है। कुछ पुस्तकें ऐसी होती हैं, जिन्हें एक बार पूरा पढ़ लिया जाता है। बहुत कम पुस्तकें ऐसी होती हैं, जिन्हें बार-बार पढ़ने का चाव होता है।"

लेखक को उपर्युक्त बात ध्यान में रखकर पुस्तक लिखनी चाहिए। 'गुदड़ी का लाल' भारत की अवस्था का जीता-जागता चित्र है। ज़मींदारों के अत्याचार, सरकारी नौकरों का भ्रष्टाचार, पुलिस का अमानुषिक व्यवहार, ग़रीबी की कठोर तपस्या, नारी का अत्यंत कोमल तथा अत्यंत कठोर हृदय, विद्या की लगन, प्राण हथेली पर रखकर जीवन-संग्राम में कूद पड़ने का अदम्य साहस, सामाजिक कुरीतियों का भंडाफोड़, व्यंग्य और हास्य की मीठी, हृदय को गुद-गुदानेवाली चुटकियाँ, निःस्वार्थ सेवा, हिंदू-मुसलिम-ऐक्य, गांधीजी का पथानुसरण आदि-आदि अनेकानेक आवश्यक विषयों से इस पुस्तक का कलेवर परिपुष्ट हुआ है। यह पुस्तक केवल समय काटनेवाली ही नहीं, वरन् आपकी अनेक उलझनें भी सुलझानेवाली सिद्ध होगी।

स्त्री-पुरुष, युवा-युवती, बालक-वृद्ध सभी के हाथों में यह पुस्तक निस्संकोच दी जा सकती है। अश्लीलता से हज़ार हाथ दूर है।

भाषा प्रवाहमयी और मुहावरेदार है। स्थान-स्थान पर उत्तम पद्यों ने सोने में सुगंध का काम किया है। यह सब कुछ है, पर पुस्तक के अच्छे होने की कसौटी तो पाठक हैं। अतः आप पढ़िए, और अपनी निष्पक्ष सम्मति स्थिर कीजिए, तभी हम अपना श्रम सफल समझेंगे।

विनीत
मदनमोहनलाल दीक्षित

[१]

सन् १८५७ ई० का ग़दर भारतवासियों का अँगरेज़ों को भारत से निकालने का प्रथम प्रयत्न था। उसके असफल होने पर अँगरेज़ी राज्य की जड़ मज़बूती से जम गई। साथ ही ज़मींदारी-प्रथा और महाजनी के कारोबार को भी उत्तेजन मिला। ज़मींदार को ज़मीन के सारे स्वत्व प्राप्त थे, किसान किराएदार था; उस पर ज़मींदार नालिश, बेदख़ली, इज़ाफ़ा आदि न-जाने क्या-क्या आफ़तें ढा सकता था। दीन-दुर्बल किसान भाँति-भाँति की बेगारें देकर भी ज़मींदार से मुक्त न हो सकता था। सेठ-साहूकार जिस व्यक्ति को एक बार ऋण दे पाते थे, वह याबज्जीवन उस ऋण से मुक्त न हो पाता था, और कभी-कभी तो उसे ज़मींदार या साहूकार का ग़ुलाम बनकर जीवन यापन करना पड़ता था। इन कुप्रथाओं का संक्षिप्त संस्करण आज भी देखा जाता है।

इटावे से एक सड़क भिंड (ग्वालियर-राज्य) को जाती है। इटावे से ७वें मील के पूर्व की ओर, दो-तीन फ़र्लांग की दूरी पर, जगतपुर नाम का एक छोटा-सा गाँव है। उसमें ५-७ घर ब्राह्मणों के हैं। सारे गाँव में इन्हीं की ज़मींदारी थी। गाँव की भूमि साधारण उपज-वाली थी, इसलिये ज़मींदार ब्राह्मणों ने कोई विशेष उन्नति नहीं की। एक साल पानी नहीं बरसा, बस त्राहि-त्राहि मच गई, सारा गाँव ध्वस्त हो गया। ज़मींदार ने पड़ोस के गाँव के एक ठाकुर साहब से ऋण की याचना की। एक तो अवर्षण, दूसरे, घर में कन्या का विवाह, ऋण लेने के अतिरिक्त कार्य संपन्न होने का कोई

दूसरा मार्ग दिखाई न दिया। ठाकुर लोगों ने आठ सौ रुपए दो रुपए सैकड़ा मासिक सूद पर ऋण दिया। तीन वर्ष में ऋण चुकाने का वादा था, पर तीन वर्ष व्यतीत होने पर भी ब्राह्मण ज़मींदार ने अपने साहूकार को एक पैसा भी नहीं दिया। इधर ५७६) सूद के हो गए। ठाकुर ने १२४) और देकर १५००) का उसी सूद पर नया स्टांप लिखा लिया। अब ब्राह्मण देवता ऋण के पंक में आकंठ मग्न हो गए, और उन्हें ऋण चुकाने की कोई भी युक्ति न सूझती थी। गाँव-भर के ज़मींदार थे, घर का ख़र्च उजला था, बचत नाम-मात्र भी न होती थी। परिणाम यह हुआ कि ठाकुर ने नालिश करके गाँव की ज़मींदारी नीलाम करा ली। अब गाँव के ब्राह्मण ज़मींदार किसान बन गए, ज़मींदार से साक़िगुल मिलकियतवाले काश्तकार बन गए। जिस सीर का एक पैसा भी किसी को न देते थे, उसी सीर पर लगान बँध गया, और वह सीर साक़िनुल मिलकियत बन गई। ब्राह्मण ज़मींदार के तीन लड़के थे। बाप के मरते ही तीनों अलग-अलग हो गए। आपसी तौर पर खेत बाँट लिए। प्रत्येक के भाग में चालीस बीघा खेत और ५०) लगान आया।

तीनों भाइयों में रामनाथ सबसे बड़े, रामविलास मँझले और रामचंद्र सबसे छोटे थे। रामनाथ के दो बच्चे थे, पर वे इतने छोटे थे कि रामनाथ को खेती के काम में कोई मदद न दे सकते थे। बड़ा लड़का यदुनाथ बाप को खेतों पर गुड़-सत्तू और पानी दे आता था। छोटा हरनाथ खेलता फिरता था। रामविलास के कोई संतान न थी, वह और उनकी स्त्री, दोनों गृहस्थी को संचालन भले प्रकार करते थे। दो बैल और एक भैंस रखते थे। बाहर खेतों का काम रामविलास करते और घर पर बैलों और भैंस के दाने-चारे की चिंता उनकी स्त्री करती थी। छोटे भाई रामचंद्र का भी यही हाल था।

रामविलास इस चिंता में चूर रहते थे कि किसी तरह चार पैसे हाथ में आ जायँ, तो अच्छा हो। एक मुश्किल यह और हुई कि ज़मींदार ठाकुर नाहरसिंह अपना गाँव छोड़कर इसी गाँव में आकर बस गए, क्योंकि वह पड़ोस के जिस गाँव में रहते थे, उसमें उनकी ज़मींदारी केवल दो आना-भर थी, और जगतपुर में वह सोलहो आने के मालिक थे। सारा गाँव उनको रिआया था। गाँव में उनकी तूती बोलती थी। उनका नथुआ नाम का एक नौकर था, जो जवान, तंदुरुस्त और गुंडा तबियत का आदमी था। लोग नथुआ से डरते थे। ठाकुर साहब के पास जाकर सच्ची-झूठी ख़बर करके वह लोगों को हानि पहुँचा देता था; इसलिये ठाकुर नाहरसिंह के साथ गाँव पर नथुआ की धाक भी पर्याप्त थी। वह किसी के घर से दूध, किसी के घर से चारा, कहीं से चारपाइयाँ लाकर ठाकुर साहब के मेहमानों का मुफ़्त में सत्कार किया करता था। ठाकुर साहब एक तो पूरे गाँव के ज़मींदार, दूसरे, ठाकुर ठहरे। दारोग़ाजी, अमीन साहब, क़ानूनगो, चपरासी, चिट्ठीरसा, जो कोई भी ठाकुर साहब के दरवाज़े पहुँच जाता, यथायोग्य सत्कार पाता था। नथुआ सब सामान पलक मारते जुटा देता था। एक दिन पुलिस के दारोग़ाजी दो कांस्टेबिलों के साथ गाँव में आए। ठाकुर साहब के दरवाज़े पहुँचे। दोपहर के बारह बजे होंगे। और सब सामान तो ठीक था, दूध की कमी थी। नथुआ दूध की तलाश में निकला। संयोग से रामविलास घर के द्वार पर मिल गए। चूँकि पहले इस गाँव के ज़मींदार ये ही लोग थे, इसलिये इनसे कोई बेगार न ली जाती थी। पर आज नथुआ को कोई दिखाई न पड़ा, और रामविलास शेर के मुँह में पड़ गए।

नथुआ ने कहा—"रामविलास महाराज, दूध चाहिए।"

रामविलास—"सारा गाँव पड़ा है, जाकर ले आओ।"

नथुआ—"आज कई जगह हो आया, कहीं ठिकाना नहीं लगा, तब तो झख मारकर आपके पास आया।"

रामविलास—"हम लोग तो बेगार नहीं देते।"

नथुआ—"बेगार न सही, जैसे देना चाहें, दे दीजिए।"

रामविलास—"देखो भाई! नई रस्म न डालो।"

नथुआ—"काम अटक रहा है, नई रस्म की बात नहीं।"

रामविलास—"नई रस्म तो है ही। आज दिया, और कल से बेगार के रजिस्टर में लिख गए।"

नथुआ—"अब रिआया तो हो ही, यह ठाकुर की भलमनसाहत है, जो आपसे बेगार नहीं लेते।"

रामविलास—"एक तो हम पहले ज़मींदार थे, दूसरे ब्राह्मण, हमसे बेगार कैसी?"

नथुआ—"महाराज! दारोग़ाजी आए हैं, दूध बहुत जल्दी चाहिए।"

रामविलास—"तो जाकर कहीं से ले आओ।"

नथुआ—"आपसे कहते तो हैं।"

रामविलास—"हम तो दूध न देंगे। आज दूध, कल नज़र-भेंट और परसों·····।"

नथुआ—"आज दूध न दोगे, तो ये सब भुगतने पड़ेंगे।"

रामविलास—"जायगा कि·····।"

नथुआ—"जाता हूँ, पर रामविलास महाराज, बुरे घर नेवता दे रहे हो।"

रामविलास—"चल-चल, देखे हैं तुझ-से लाखों।"

नथुआ बड़बड़ाता हुआ चला गया। दूध तो दूसरी जगह से ले आया, पर दारोग़ाजी के जाते ही नथुआ ने रामविलास की हज़ारों शिकायतें कीं—कल से ज़मींदार हुए हैं। हमको ठकुरायत न

दिखाएँ। हम चमार नहीं हैं, जो बेगार दें। नथुआ ने ऐसी-ऐसी सैकड़ों शिकायतें करके नाहरसिंह का मन रामविलास की ओर से फेर दिया। नई फ़सल का लगान देने का समय हो चुका था। ठाकुर ने रामविलास से बिना कुछ कहे-सुने नालिश कर दी। जब सम्मन आया, तो रामविलास बहुत चौंके। चपरासी के साथ नथुआ भी था।

नथुआ ने कहा—"महाराज! मैंने कहा था, बुरे-बुरे सपने देखोगे, सो आगे आया। अब भी कुछ बिगड़ा नहीं, ठाकुर साहब से जाकर कुछ कह-सुन लो।"

रामविलास ने तो कुछ नहीं कहा, पर बड़े भाई रामनाथ ने ठाकुर साहब से कहा—"आपने झँझटे भाई पर नालिश कर दी?"

ठाकुर—"क्या करते?"

रामनाथ—"हम सबसे कह-सुन तो लेते।"

ठाकुर—"कहने-सुनने का असर नहीं होता। एक दिन नथुआ दूध को गया, तो कोरा उत्तर मिला।"

रामनाथ—"आप हमारे कान में बात तो डालते।"

ठाकुर—"आप क्या करते?"

रामनाथ—"हम झँझटे को समझाते, आपसे कहते।"

ठाकुर—"अब तो जो होना था, हो गया।"

रामनाथ—"ठाकुर साहब! आपने अच्छा नहीं किया।"

ठाकुर—"बिलकुल ठीक किया।"

रामनाथ—"तो हम लोग मामूली रिआया बनकर रहेंगे?"

ठाकुर—"यह तो अपने भाई रामविलास से पूछिए।"

रामनाथ—"आपको याद रखना था कि कल तक हम ज़मींदार थे।"

ठाकुर—"आपको याद रखना है कि आज हम ज़मींदार हैं।"

बिना बात के बतंगड़ बन गया। रामनाथ उठकर घर चले आए। रामविलास ने अदालत में रुपया जमा कर दिया। अब लड़ाई ठन गई। नथुआ ने जो बीज बोया था, फल लाया। रामविलास के बाप ने, जब ज़मींदारी चली गई, तब एक खेत के किनारे, ऊसर में, पाँच पेड़ आम के लगा लिए थे, उनकी भाई पर पाँच पेड़ नीम और पाँच शीशम के लगा दिए। खेतों की सिंचाई के साथ इन पेड़ों की सिंचाई भी हो जाती थी। अनुकूल भूमि पाकर पेड़ बहुत जल्द फल लाए, और ये पाँच पेड़ ही इन लोगों के भाग का काम देते थे। चूँकि प्रत्येक प्रकार के पाँच पेड़ थे, इसलिये इनका नाम 'पँचपेड़ा' पड़ गया। ठाकुर नाहरसिंह की नज़र बदल चुकी थी। उन्होंने देखा, ऊसर के ये पेड़ ज़मींदार के हैं। नथुआ से कहने-भर की देर थी कि नीम के पेड़ से एक मोटी शाख़ काटकर नथुआ ठाकुर के यहाँ ले आया। तीनो भाई इकट्ठे हुए, और सम्मति ठहरी कि एक बड़ा नीम का पेड़ काट डाला जाय, तब देखो, ठाकुर क्या कहते हैं? यही किया गया। पेड़ काटने पर नथुआ रोकने गया, तो तीनों भाई लड़ने को तैयार हो गए। अब ठाकुर का पारा गर्म हो गया। दीवानी में नीम का दावा कर दिया, और तहसील में नथुआ नौकर की ओर से मार-पीट की नालिश कर दी। मुक़द्दमा चला। तीनों भाइयों के पास जो कुछ बची-खुची पूँजी थी, ख़र्च हो गई। फ़ौजदारी के मुआमिले में पंद्रह-पंद्रह रुपया प्रत्येक भाई पर जुर्माना हुआ, और दीवानी से डेढ़ सौ रुपए की डिग्री इनके ऊपर हुई। जुर्माना तो तीनो भाइयों ने अपना-अपना किसी तरह दिया, पर दीवानी की डिग्री अकेले रामविलास से वसूल करने की सोची गई। उनकी भैंस क़ुर्क़ कर ली गई। रामविलास ने ५०) अदालत में जमा करके मुहलत ले ली। गहना गिरवी रखकर यह कार्य किया गया। अब बाक़ी सौ रुपया कहाँ से दिया जाय? पति-

पत्नी, दोनों चिंता-ग्रस्त थे। भैंस के बचने की कोई आशा न थी, फिर भी रुपया देने को शेष रह जाता था। पत्नी को और चिंताओं के साथ पति की चिंता भी थी। इधर उसे आठ मास का गर्भ था। पूरे दिन होने से पहले ही बच्चा पैदा हुआ। एक तो चिंता-ग्रस्त शरीर, दूसरे, दूध-दही खाने को न मिला, तीसरे, ऊपर से देख-रेख करनेवाला भी कोई न था। परिणाम यह हुआ कि रामविलास की स्त्री की दशा दिनोंदिन खराब होकर एक दिन वही हुआ, जो होना अवश्यंभावी था; रामविलास पर वज्रपात हुआ। घर में पैसा नहीं, मन में साहस नहीं, शरीर में स्फूर्ति नहीं, इधर घर में गृहिणी नहीं, चारों ओर अंधकार-ही-अंधकार दिखाई देने लगा।

[२]

रमनाथ ने दौड़-धूप करके रामविलास का ब्याह ठहराया। ब्याह क्या था, रस्म पूरी करनी थी। एक पैसा दाग-दहेज़ में न मिलेगा। बरात में दस आदमी से ज़्यादा न जायँगे। बस, यह समझ लो कि सब बातों के बदले लड़की-ही-लड़की है। पर यहाँ तो घर सूना है, लड़की ही चाहिए। रामविलास का ३२ वर्ष की अवस्था में, १४ वर्ष की लड़की से, ब्याह हो गया। लड़की ब्याह में ससुराल आई। मायकेवालों ने नाता तोड़ लिया। ब्याह-गौना सब एक साथ ही हो गया। घर में गृहस्थी की दशा साधारण से गिरी हुई थी। नवागता वधू ने अपने जौहर दिखाए, पर 'घी-मैदा अच्छी कि बहू का हाथ अच्छा।' जब घी-मैदा है ही नहीं, तब बहू क्या करे? इधर ठाकुर साहब का क्रोध अन्य भाइयों से हटकर रामविलास पर जा अटका। दीवानी की डिग्री का सारा रुपया रामविलास से वसूल किया। भैंस बिक गई, कुछ गहना भी गया, तब दीवानी की डिग्री का रुपया भर सके। अब घर की दशा बिगड़ने लगी। यों तो तीनो घरों की दशा ख़राब थी, पर ठाकुर के रोष ने रामविलास को मिट्टी में मिलाने की प्रतिज्ञा-सी कर ली। शेष दोनो भाई अपनी ख़ैरियत अलग रहने में ही समझने लगे। अब बात के सहारे को छोड़कर दोनो भाई रामविलास को कोई सहारा न देते थे। इधर रामविलास पर ऋण चढ़ने लगा, उधर लगान दो वर्ष से न दे सके। देते भी कहाँ से? दो-दो मुक़दमे लड़े, पत्नी की बीमारी के बाद देहांत, नया ब्याह, दीवानी की डिग्री, करें, तो क्या करें? रात-दिन चिंता में

क्रूर पुरुष साहस-हीन हो जाता है। और 'बिन हिम्मत किम्मत नहीं, वही चील, नहि बाज।'वाली बात सही है। एक साहस हज़ार विपत्तियों से लड़ता है, पर साहस-हीन व्यक्ति चींटी से भी डरता है।

एक दिन रामविलास ने पत्नी से कहा—"तू जिस दिन से घर में आई, विपत्ति को साथ लाई।"

पत्नी ने आँसू भरकर कहा—"मुझे जमुनाजी में डुबा दो, बस, बेड़ा पार।"

रामविलास लाख यत्न करते, पर पूरा न पड़ता; हाथ-भर जोड़ते और डेढ़ हाथ फट जाता था। इसी ग़रीबी में ही श्रीमतीजी ने गर्भ धारण किया। ठीक समय पर पुत्र-रत्न ने दर्शन दिए। पिता ने कहा—"हम दो व्यक्ति ही भर पेट भोजन न पाते थे, इस तीसरे की गुज़र कैसे होगी?"

मा ने कहा—"जिस भगवान् ने मुँह खोला है, वही खाने को देगा।"

बच्चे का नाम रामगोपाल रक्खा गया, पर मा केवल गोपाल ही कहती थी, क्योंकि बाप के नाम में भी राम लगा था, और हिंदू नारी पति का नाम स्वप्न में भी नहीं ले सकती। गोपाल तो चंद्र-ज्योत्स्ना की भाँति बढ़ने लगा, पर उसके साथ ही उससे पाँच पैर आगे उसके घर की निर्धनता भी बढ़ने लगी। ठाकुर ने पँचपेड़ा पर क़ब्ज़ा कर लिया, और यह परिवार दाल में आम डालने को तरसने लगा। जब तीन वर्ष का लगान इन लोगों पर हो गया, तो ठाकुर ने नालिश कर दी। इधर डिग्री हुई, उधर नई फ़सल की नालिश हो गई। अब तो तीनों भाइयों के छक्के छूट गए। खेत बेदख़ल हो गए, और यह परिवार एक निराश्रय परिवार रह गया। इसी समय ठाकुर साहब ने किसी चोरी में रामविलास का नाम रखवा दिया। दारोग़ाजी तो ठाकुर के कहने में थे ही, उन्होंने झूठा चालान कर दिया।

३-४ महीने मुक़दमा चला, घर के गहने और भारी-भारी बर्तन तक बिक गए। प्रामाणिक साक्षी के अभाव में रामविलास छूट तो गए, पर शरीर जीर्ण-शीर्ण हो गया, रोग ने घर दबाया, श्वास चलने लगी। लोग दमा के रोगी के लिये कहते हैं—'दम दम के साथ जाता है।' पैसा हो, तो दवा-दारू हो, यहाँ भोजन के लाले थे, दवा-दारू कौन करे? तीन वर्ष का गोपाल रोगी बाप की चारपाई के चारों ओर घूमकर अपने तोतले वचनों से बाप को प्रसन्न करने की असफल चेष्टा करता था। रामविलास बीमार, बच्चा नादान, अकेली गोपाल की मा पर सारी गृहस्थी के कष्टों का बोझ पड़ा। उसे भी ज्वर आने लगा। अब घर में न बैल थे, न भैंसें; न गहना रहा, न बर्तन। दुःख-दारिद्र्य और संकटों का समूह चारों ओर मुँह बाए खड़ा था। ऐसे ही संकट के समय में एक दिन रामविलास ने परलोक-यात्रा की। भाइयों की निर्धनता-जन्य बेरुखाई के कारण उन्होंने गोपाल या उसकी मा को किसी को न सौंपा। जब मरण-काल आया, तो गोपाल की मा ने उनसे पूछा था—"हमें किसको सौंपते हो?"

रामविलास ने क्षीण स्वर में कहा—"भ ग वा न् को।"

सचमुच भगवान् ही को सौंपा। मरने के बाद तेरहीं तक दोनों भाई आते-जाते रहे, इसके बाद उनका आना-जाना भी बंद हो गया। ग़रीब का कौन साथ दे? फिर, वे दोनों भाई भी इनसे कुछ ही अच्छी दशा में थे। खेत सबके बेदख़ल हो चुके थे। उन दोनों भाइयों ने ५०) के ७५) देकर फिर वे ही खेत लगान पर ले लिए, पर रामविलास की विधवा क्या करे? रामविलास गए, खेत गए, पँचपेड़ा गया, और घर का सब कुछ गया। अगर कोई सहारा शेष था, तो गोपाल। मा के हृदय में जब हूक उठती, गोपाल को छाती से चिपटाकर आग पर पानी डालती। जब गोपाल अपने भोले

और चमकीले नेत्रों से मा की ओर देखकर कहता—"मा ! क्यों रोती हो ?" तो मा झट आँसू पोंछकर, गोपाल को गोद में बिठाकर प्यार करती, चुमकारती और कहती—"कहाँ रोती हूँ ?" फिर गोपाल को छाती से लगाकर दुलार करती, और कहती—"मेरा गोपाल—गुदड़ी का लाल।"

सब कष्ट सह लिए जाते हैं, पर भूख का कष्ट असह्य होता है। मुर्दा घर में रक्खा है, पर बच्चा मा से रोटी माँगता है। लाश को गाड़ी पर लादकर जलाने के लिये गंगा या जमुना पर ले जा रहे हैं। दस आदमी साथ हैं, रात को जहाँ ठहरे, वहीं भोजन बनाया। इधर गाड़ी पर लाश रक्खी है, उधर पेट-पूजा हो रही है। तभी तो कहा है—

जराकष्टं मनुष्याणां, कष्टं निर्धनजीवनम्;
पुत्रशोको महत्कष्टं, कष्टात्कष्टतरं क्षुधा।

मनुष्यों के लिये वृद्धावस्था कष्टदायक है, निर्धन जीवन कष्ट है, पुत्र-शोक महाकष्ट है, और कष्ट से कष्टतर क्षुधा है।

गोपाल की मा विधवा है, निर्धन है, पति का शोक है, जो पुत्र-शोक से कम नहीं, फिर क्षुधा का महाकष्ट हर समय मुँह बाए खड़ा है! मायके में कोई है नहीं। उन लोगों ने ब्याह करके आज तक ख़बर नहीं ली। घर का यह हाल है कि शाम के भोजन का आसरा नहीं। सबसे बढ़कर बात यह है कि कोई संरक्षक नहीं। कब क्या हो जायगा, कौन जाने ?

जगतपुर में एक वैश्य की विधवा रहती थी। उसका नाम था गुलाबो। इसी जगतपुर की लड़की थी। उसका पति यहीं आकर व्यापार करने लगा। इटावे से माल लाकर जगतपुर में बेचता, और जगतपुर का माल इटावे ले जाता। जब वह मर गया, तो गुलाबो ने भी वही मार्ग पकड़ा। यद्यपि व्यापार की मात्रा थोड़ी रह गई, फिर भी गुलाबो के खाने-भर को पर्याप्त थी। गुलाबो कभी-कभी गोपाल

की मा के पास आया-जाया करती थी। गोपाल की मा ने घर के बचे हुए बर्तन गुलाबो द्वारा बिकवाकर पापी पेट को शांति दी। पर इस तरह कब तक चलता? एक दिन तो था नहीं कि बिना खाए ही कट जाता, यहाँ तो सारा जीवन व्यतीत करना था, और गोपाल की मा की उम्र कुल २१ वर्ष थी। इस २१ वर्ष में उसने २१ वसंत देखे, अपना ब्याह देखा, पति के ऊपर का संकट देखा, बच्चा गोद में देखा, और देखा घर का सर्वनाश!

रात को, गोपाल के सो जाने पर, वह प्रार्थना करती—"भगवान्! अब क्या देखने को शेष है? सब कुछ देख लिया। अब मेरे पापों का प्रायश्चित्त हो चुका हो, तो मेरी मिट्टी समेट लो। इस संसार में रहने को जी नहीं चाहता। मैं हराम और आलस्य की कमाई नहीं खाना चाहती, पर आज भलमनसाहत से परिश्रम करके पेट पालने के मार्ग भी बंद हो गए। तुम तो अशरण-शरण हो, मुझ-सी दुखिया, अनाथिन इस संसार में क्या कोई दूसरी और है? मैं अपनी उपमा आप हूँ, तो गोपाल को, हे गोपाल! तुम शरण में ले लो, और मुझे बिदा दो। कर्म भोगने होंगे, पर परीक्षा वहाँ तक लो, जहाँ तक परीक्षा की अंतिम सीमा न आ जाय। मरने से पहले दवा न दी गई, तो उस दवा से क्या लाभ? तुम घट-घटवासी हो, फिर मेरे मन की क्या तुमसे छिपी है? आओ, इस हृदय में झाँककर देखो—पाप, 'ताप, कारिख, औ' जारा' ही इसमें दिखाई देगा। जल-भुनकर ख़ाक हो गया है। अब किस आशा पर प्राण रक्खूँ? गोपाल पर? पाँच वर्ष का अबोध बालक मा और भूख को छोड़कर केवल खेलना जानता है। वह न लोक जानता है, न परलोक; न राम जानता है, न रहीम। उसे मेरे साथ इस असह्य वेदना में क्यों सम्मिलित करते हो? बहुत हो चुका, नाथ! अब तो क्षमा करो। क्या तुम्हारा हृदय पत्थर का हो गया है, या मेरे पाप कर्मों का अंत अनंत में लीन है? आख़िर

क्या बात है ? तुमने गज की सुनी, गणिका की सुनी, द्रौपदी की सुनी, पर मेरी बारी पर कान मूँद लिए, या अभी और परीक्षा बाक़ी है ? आज अपने आँसुओं से व्रज को डुबा सकती हूँ, हृदय की आहों से संसार को जला सकती हूँ। जो कष्ट है, वह वर्णनातीत है। बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त के शब्दों में—

डूब रही पुण्य-भूमि देखो व्रजराज, आज,
कैसे हा ! बचेगी, जो न आप ही बचाओगे ?
ध्वंस हुआ जाता सौरभेयी-वंश कंस-रिपो !
नष्ट हुआ गोकुल क्या दूसरा बसाओगे?
मारे अहो ! जाते ये तुम्हारे सारे प्यारे जन,
माधव ! मुरारे ! कैटभारे ! कब आओगे ?
देर जो लगाओगे, न पाओगे किसी को यहाँ,
पीछे पछताओगे, कठोर कहलाओगे।

"नाथ ! यह समय की सताई, अनाथ, अबला तुम्हारे चरणों में अपनी अर्ज़ी लेकर आई है। अब 'अर्ज़ी हमारी, फेरि मर्ज़ी तुम्हारी है।'"

गोपाल की मा के नेत्र अश्रु-परिपूरित हो गए। गला रुँध गया, और उसकी दशा—'न मरते हैं, न जीते हैं, यही हालत हमारी है'-वाली हो गई। कोरी आँखें सबेरा हो गया। शाम को भोजन नहीं मिला, दोपहर को पाव-भर सत्तू मिले, जिससे मा-बेटे दोनों ने पेट को धोखा दिया, साथ ही एक चुटकी-भर बच्चे के लिये रख छोड़े। शाम को बच्चा—"मा, भूखा हूँ।" कहता-कहता सो गया। सबेरे उठकर पहली बात "मा, भूखा हूँ।" कहेगा। हाय भगवान् ! उसे कहाँ से खाना दूँगी। गोपाल जागा, उठते ही—"मा, भूखा हूँ।" कहकर कातर दृष्टि से मा की ओर देखा। मा ने गोपाल को कलेजे से चिपटा लिया, पर प्यार से भूख तो नहीं जाती।

[३]

दो घंटा दिन चढ़ा होगा कि बाहर से आवाज़ आई—"गोपाल की मा !"

क्या बात है ? कौन टेरता है ? क्या भगवान् ने अपना दूत ख़बर लेने भेजा है ? गोपाल की मा इसी सोच-विचार में थी कि फिर वही आवाज़ आई—"गोपाल की मा !"

गोपाल की मा ने कहा—"गोपाल ! देख तो, कौन है ?"

उत्तर मिला—"मैं हूँ ठाकुर साहब का नौकर नथुआ।"

गोपाल की मा को नथुआ के बदले यम का दूत पुकारता, तो खुश होती, पर इस अनचाहे आगंतुक से कैसे पीछा छुड़ाए ? उसने फिर कहा—"गोपाल की मा ! ठाकुर साहब को मालूम हुआ है कि तुम बहुत कष्ट में हो, इसलिये उन्होंने कहा है कि हमारे यहाँ चली आएँ, खाना बनाएँ, खुद खाएँ, और हमें खिलाएँ। अपने को नौकरानी न समझें, मालकिन की तरह रहें।"

गोपाल की मा के कानों में इन शब्दों के बदले सीसा गर्म करके डाल दिया जाता, तो उसे स्वीकार था, पर ये शब्द—विशेषकर अंतिम वाक्य हलाहल विष-जैसा प्रतीत हुआ। कोई उत्तर न दिया।

"तो ठाकुर साहब से क्या कह दूँ ?"

गोपाल की मा ने गोपाल द्वारा कहलाया—"कुछ नहीं।"

नथुआ ने सुन लिया, और कहा—"गोपाल की मा ! कुत्ते की मौत मरोगी, दाने-दाने को मुहताज होगी, न-जाने कौन-कौन दिन देखने पड़ेंगे, इसलिये घर आई रोटी को ठोकर न मारो।"

गोपाल की मा क्रुद्ध नागिनी की भाँति आँठ फड़काने लगी, पर कुछ सोचकर, दाँत पीसकर बंद कर लिए।

नथुआ ने फिर कहा—"तो ठाकुर साहब से जाकर क्या कह दूँ?"

"कुछ नहीं।" उत्तर पाकर नथुआ चला गया।

आज गोपाल की मा ने सोचा—सर्वस्व चला गया, एक आबरू बची है, उस पर भी आँच आना चाहती है। क्या होना है, समझ में नहीं आता। अच्छा, उनकी नौकरी कर लूँ, खुशी-खुशी उनके घर जाऊँ, और सारे घर को विष खिलाकर, एक साथ ही समाप्त करके दिल की आग ठंडी कर लूँ। पर विष मिलेगा कहाँ? गुलाबो से मँगाऊँ? पैसा कहाँ से आएगा? उतने पैसों से दो-चार दिन पेट-पालन होगा। फिर गुलाबो ने विष न ला दिया, और ठाकुर से कह दिया, तब तो वह कुत्तों से चिथवा डालेगा।

सारा दिन इसी प्रकार के ऊहापोह में बीत गया, और वह कुछ निश्चय न कर सकी। शाम को गुलाबो इटावे से लौटकर आई, और इनका लोटा बेचकर अनाज ले आई। गोपाल की मा ने गुलाबो से कहा—"बुआ! (साथके में रहने के कारण उसे सब लोग बुआ ही कहते थे।) एक बड़ी ज़रूरी बात तुमसे कहनी है।"

गुलाबो ने कहा—"अभी थकी-हारी इटावे से आई हूँ, कल आकर तुम्हारी बात सुनूँगी।"

कहते-कहते गुलाबो बुआ बाहर निकल गईं। अनाज को ठीक करके गोपाल की मा ने उसी समय पीसा, रोटी बनाई, बच्चे को खिलाकर, अपना पानी पेट भरकर लेट रही। वही नथुआ की बातें रात-भर स्वप्न में देखती रही। कोई उचित उपाय उसे न सूझ पड़ा। सवेरे तीन बजे उठी, और ईश्वर से प्रार्थना की—"दयालो! पसीजो, और इस अनाथा की खबर लो, नहीं तो दीन और ईमान,

दोनो जाते हैं। धन तो गया। धर्म पर आँच आती है, और तुम सुनते नहीं, क्या बहरे हो गए? या मेरी बारी पर आपने न सुनने की सौगंद खा ली है? मुझे बुद्धि दो, साहस दो कि मैं अब धर्म पर प्राणों को निछावर कर सकूँ। गोपाल का क्या होगा? जो हो, सो हो। अब मुझे प्राण त्याग करने को उद्यत होना चाहिए, नहीं तो आबरू पर आँच आने को है। भगवान्! तुमने अहल्या की सुनी, द्रौपदी की लाज रक्खी, क्या मेरी न सुनोगे? अच्छा, यदि मैं सच्चे हृदय से प्रार्थना करती होऊँ, तो ख़बर लो, नहीं तो डुबो दो।"

सबेरा हुआ, लोग इधर-उधर आने-जाने लगे। कोई हल ले जा रहा है, कोई गाय-भैंस की सानी-पानी की चिंता कर रहा है। चारों ओर चहल-पहल मची है। पर गोपाल की मा के हृदय में अंधकार था। क्या उस एक के शोक में दुनिया अपना कारबार बंद कर देगी? रेल में खिड़की से किसी मुसाफ़िर का हाथ कुचल जाय, तो क्या रेल खड़ी रहेगी? रास्ता देखते-देखते नौ बज गए, पर गुलाबो बुआ न आईं, क्या करूँ? गोपाल को भेजूँ। गोपाल से कहा, तो उसने कहा—"मुझे उनका घर नहीं मालूम।"

"मेरा गोपाल—गुदड़ी का लाल!" कहकर मा ने पुचकारा, और जाकर गुलाबो बुआ को बुला लाने को कहा। अभी गोपाल उत्तर भी न दे पाया था कि बाहर से आवाज़ आई—"गोपाल की मा!"

गोपाल की मा के प्राण सूख गए। यह नथुआ की आवाज़ थी। कोई उत्तर न पाकर उसने कहा—"गोपाल की मा! फिर मेरी बात के लिये क्या तय किया?"

कोई उत्तर न पाकर उसने फिर कहा—"हाँ-नहीं का जवाब मिलना चाहिए। रामविलास ने एक बार मेरा कहना न मानकर बुरे-बुरे सपने देखे। अब मैं तुम्हें समझाता हूँ, रानी बनकर रहोगी। ठकुराइन भोली-भाली हैं, कुछ नहीं जानतीं। ठाकुर ने चार दिन

तुम्हारे हाथ की रोटी खाई, और फिर जो चाहोगी, उनसे करवा लोगी। दोनो हाथ लड्डू हैं। समझाना मेरा काम है, मानना-न मानना तुम्हारा काम है। बोलो, क्या कहती हो?"

इतना कहकर नथुआ भीतर की ओर झाँका। गोपाल की मा मुँह खोले, बच्चे को पास बिठाए, चिंता-ग्रस्त बैठी थी। ज्यों ही नत्थू झाँका, उसने कहा—"बाहर रहो।"

और झट किवाड़ बंद कर लिए।

चलते समय नथुआ ने फिर पूछा—"ठाकुर से जाकर क्या कह दूँ?"

गोपाल की मा ने कहा—"कुछ नहीं।"

"देखूँगा तुम्हारी कुछ नहीं। इस तरह किवाड़ों के क़िले में कब तक बंद रहोगी।

कब तक छिपेंगी कैरियाँ* पत्तों की आड़ में;
आख़िर को आम होके बिकेंगी बज़ार में।"

गोपाल की मा के जी में आया, इस कलमुँहे को अभी इसका मज़ा चखा दूँ, पर कुछ सोचकर चुप हो रही। इतने में किसी ने द्वार की साँकल खटखटाई—"गोपाल की मा!"

हाय! हत्यारा फिर लौट आया, तो अब के गड़ाँसे से उसकी गर्दन उड़ा दूँ, पेट में हँसिया भोंक दूँ! कि फिर किसी ने कहा—"गोपाल की मा! किवाड़ खोलो।"

"ओ हो! गुलाबो बुआ हैं। आओ, मैं तो समझी, कोई और है।"

गुलाबो भीतर आ गईं। गोपाल की मा ने द्वार की साँकल फिर बंद कर दी। गुलाबो से नथुआ के आने की सारी कथा कहकर,

---

* कच्चे आम।

ठाकुर के घर जाकर सब घर को विष देने या आत्महत्या करने के संबंध में उसने गुलाबो की सम्मति चाही। गुलाबो ने कहा—"बहू! आबरू पर आँच आई, तो सब गया। सर्वनाश तो हो ही गया। अब यह बच्चा बच रहा है, इसे पालने की चिंता करो। किसी दिन भगवान् ने सयाना करके किसी योग्य किया, तो रोटी देगा। आत्म-हत्या करने से बच्चा दर-दर का भिखारी होकर किस घाट लगेगा, कोई नहीं कह सकता। और, ठाकुर के घर जाकर विष देने की बात बहुत बुरी है। किसी जन्म के कर्म तो आज भोग रही हो, अब इस जन्म में फिर खोटे कर्म करके अगला जन्म न बिगाड़ो। जो किया है, वह आत्महत्या के बाद भी भोगना पड़ेगा, और आत्महत्या का पाप अलग लगेगा, इसलिये मैं इन दोनो कार्यों से रोकती हूँ।"

गोपाल की मा ने कहा—"तो रास्ता बताओ कि क्या करूँ?"

गुलाबो ने कहा—"मेहनत-मज़दूरी करके ज़िंदगी काटो।"

गोपाल की मा ने कहा—"इस घर में तो अब मैं क्षण-भर ठहरना बुरा समझती हूँ। कलमुँहा कह गया है—किवाड़ों के क़िले में कब तक बची रहोगी? सो बुआ, मुझे बाहर ले चलकर मेहनत-मज़दूरी पर लगा दो, मैं यहाँ न रहूँगी। दम-दम की ख़ैर है, न-जाने कब क्या हो जाय?"

गुलाबो ने कहा—"अपने जेठ और देवर से पूछ लो।"

गोपाल की मा ने कहा—"कोई पास नहीं आता कि कुछ माँग न बैठूँ। फिर उनके दिन भी तो बुरी तरह कट रहे हैं। बस, एक ही बात है कि आदमी बंदा हैं, इसलिये घर की लाज बची है। मेरे घर की तरह नथुआ वहाँ नंग-नाच नहीं मचा सकता। बाक़ी जो कुछ है, ईश्वर का नाम है। बुआ! अब मैं यहाँ नहीं रह सकती। सबेरे वह यमदूत नथुआ फिर आ पहुँचेगा। मैं चाहती हूँ कि उसके आने के पहले ही मैं घर से बाहर चल दूँ।"

गुलाबो ने आगा-पीछा सोचने की बात कही, पर गोपाल की मा ने कहा—"सब सोच चुकी। बुआ, अब भगवान् मेरे कंठ पर बैठे हैं। तुम मुझे बाहर ले चलो, और किसी मेहनत-मजदूरी पर लगा दो। भगवान् सब भला करेंगे। यहाँ तो चारों ओर काँटे-ही-काँटे हैं। बाहर इससे ज़्यादा काँटे न होंगे। फिर कुएँ में गिरकर प्राण देना तो बाएँ हाथ का खेल है।"

जब गुलाबो सब बातें समझा-बुझाकर हार गई, तब उसने कहा—"अच्छा, मैं तो परसों हटावे जाना चाहती थी, पर तुम्हारी ख़ातिर कल ही चली चलूँगी। सारी तैयारी कर रखना। मैं मुँह-अँधेरे आकर साँकल खटखटाऊँगी।"

गोपाल की मा ने कहा—"बुआ! एक लोटा, एक कटोरा, पाव-भर सत्तू, मैं और गोपाल, बस यही सामान तो है।"

काँर-दशहरा हो चुका था। तेरस की तिथि थी। रात्रि को एक नींद लेकर गोपाल की मा उठ बैठी। नित्य-कर्म से छुट्टी पाकर, लोटा, कटोरा और चदरा सँभालकर ठीक ही किया था कि गुलाबो बुआ आ गई। गोपाल को जगाया, पर वह नहीं जागा। उसको पीठ पर लादकर जब गोपाल की मा चलने को हुई, तब वह जाग गया। मा ने पुचकारकर कहा—"चुपचाप मेरे साथ चलो, तो तुम्हें अच्छी चीज़ ले दूँगी।"

बेचारा अच्छी चीज़ के लोभ से चुपचाप मा के पीछे हो लिया। मा ने अंतिम बार अश्रु-पूर्ण नेत्रों से घर को देखकर बिदा ली। साँकल बंद करके बाहर ताला डाल दिया, और गोपाल की उँगली पकड़कर बुआ के पीछे चल दी। गाँव के बाहर पहुँचकर उसने एक बार फिर लालसा-भरी दृष्टि से गाँव और घर की ओर देखा। थोड़ी दूर चलने पर बुआ ने कहा—"बहू! यह खेत तुम्हारा ही था।"

बहू ने झुककर, खेत के ढेलों पर अपना सिर रखकर कहा—"पृथ्वी माता! कभी गोपाल किसी योग्य हुआ, तो फिर लौटकर तुम्हारे दर्शन करूँगी, नहीं तो विवश होकर जाती हूँ, क्या करूँ? पापी पेट को पालने का कोई प्रयत्न सफल न हुआ।"

थोड़ी दूर आगे चलकर पँचपेड़ा दिखाई पड़ा। बुआ ने कहा—"यही तुम्हारा पँचपेड़ा था।"

गोपाल की मा ने रुद्ध-कंठ होकर कहा—"बुआ, मेरा कुछ नहीं था। मेरा तो अब केवल गोपाल है। इसी पर आशा अटकी है कि—

अइहैं बहुरि बसंत-ऋतु इन डारन वे फूल।"

पक्की सड़क आ गई। रास्ता सीधा और साफ़ था। सवेरा हो रहा था, सूर्योदय में अब भी आध घंटे से अधिक का समय था। तब तक ये लोग लगभग डेढ़ मील निकल गए। जब गोपाल चलने में असमर्थता प्रकट करता, तो कभी मा और कभी गुलाबो उसे कंधे पर बिठा लेतीं। आठ बजे के लगभग ये लोग इटावे आ गए। आज का मंडी में गुलाबो का काम था, अतः पहले वहीं जाना हुआ। मंडी के भीतर एक घेरा था, उस घेरे में एक अच्छी-सी दूकान बनी थी, जिसमें गद्दी-तकिया लगाए सेठ और मुनीम बैठे थे। सामने टीन के छप्पर की लंबी क़तार थी, जिसमें कहीं गेहूँ साफ़ किए जा रहे थे, कहीं दाल दली जा रही थी। गुलाबो इसी दूकान में पहुँची। सेठ से बातें कीं, और गोपाल की मा को दाल दलने का काम सिपुर्द करके बाज़ार को चली। साथ ही दाल की दलाई का ठेके का भाव बतला दिया कि मन-भर दाल की दलाई इतनी मिलेगी। रात को इसी टीन में सो रहना। मैं चौथे-छठे दिन आती-जाती रहूँगी।

गोपाल की मा दरेंटी के पास बैठकर दाल दलने लगी, और बुआ से कह दिया कि जब घर जाओ, तो मेरे पास होकर जाना।

नई मज़दूरनी, मज़दूरनी तो थी नहीं, पर समय ने उसे विवश किया कि मज़दूरनी बनी। दोपहर को मज़दूरों ने छुट्टी की। गोपाल की मा ने सत्तू घोलकर बच्चे को खिलाए और स्वयं खाए। दिन ढल गया। अब बुआ के आने की आशा लग रही थी। दाल दलते-दलते द्वार की ओर भी दृष्टि कर लेती थी। कोई सवा तीन बजे बुआ आ पहुँचीं। आते ही कहा—"बुआ, मेरे यहाँ आने का हाल किसी से न कहना। एक काम और करो कि सेठ से मेरे लिये इतना कहती जाओ कि मैं अनाथ हूँ, मुझे कोई तंग न करे।"

बुआ ने 'बहुत अच्छा' कहकर सेठ की ओर रुख़ किया। सेठ का बच्चा छ वर्ष का होगा, पास खड़ा कह रहा था—"अम्मा ने कहा है, महराजिन आज भी नहीं आई। वह बहुत बीमार है, दूसरी महराजिन को बुला दीजिए।"

सेठ द्वारकादास ने कहा—"अच्छा बेटा!"

लड़के ने फिर कहा—"अम्मा कहती थीं कि महराजिन का इंतज़ाम जल्दी करें।"

"हाँ-हाँ" कहकर सेठ द्वारकादास ने गुलाबो की ओर देखकर कहा—"गुलाबो! एक महराजिन ला दो, तो तुम्हारा बड़ा गुन मानें। हमारी महराजिन बहुत बीमार है, उसके बचने की कोई आशा नहीं है।"

गुलाबो ने कहा—"महराजिन ला दूँ, तो क्या मिलेगा?"

सेठ बोले—"भर-पेट मिठाई।"

गुलाबो ने कहा—"मिठाई खाकर कहाँ रहूँगी? रोटी तो नसीब होती नहीं।"

सेठ ने कहा—"फिर क्या चाहती हो?"

गुलाबो ने कहा—"औरों से आध सेर सौदा सस्ता मुझे मिले।"

सेठ ने कहा—"कितना लोगी ?"

गुलाबो ने कहा—'एक मन उर्द की दाल।"

सेठ बोले—"पक्की रही।"

गुलाबो ने कहा—"आज जिस मज़दूरनी को आपके यहाँ लाई हूँ, वह बड़े अच्छे ब्राह्मण-परिवार की है। समय के फेर से यह दिन देखना पड़ा। उसे घर भेज दीजिए। ऐसी महराजिन ढूँढ़ोगे और न पाओगे। पाँच वर्ष का बच्चा उसके साथ है।"

सेठ ने कहा—"पूछो, क्या लेगी।"

गुलाबो ने गोपाल की मा से कहा। उसने कहा—"बुआ, तुम सोच-विचार लो। मैं क्या जानूँ, मुझे और गोपाल को खाने और पहनने को मिले। और, सबसे बढ़कर यह कि मेरी आबरू बची रहे। बस, और कुछ नहीं चाहिए।"

गुलाबो ने सेठ से कहा। सेठ ने कहा—"कोई अंट-संट औरत तो नहीं है ?"

गुलाबो ने कहा—"चार दिन घर में रखकर देख लो, इतनी पवित्र और अच्छी है, जितनी हो सकती है। कोई उँगली उठाने लायक़ बात नहीं।"

सेठ बोले—"तो जाकर इस बच्चे के साथ उसे घर तक पहुँचा आओ।"

गुलाबो अपने साथ गोपाल की मा को लेकर चली, और सेठ द्वारकादास का छ वर्ष का बच्चा मोतीलाल भी साथ चला। गुलाबो की बिरादरी के ही यह सेठ थे। गुलाबो उनके घर आती-जाती थी। गुलाबो के पहुँचते ही 'गुलाबो बुआ आ गई' का शोर मचा। "कहो बुआ, यह साथ में कौन है ?"

बुआ ने कहा—"तुम्हें महराजिन चाहिए थी, सो ले आई।"

दोनो सेठानियों ने गोपाल की मा को बड़े ध्यान से देखा।

बीसियों प्रश्न किए। सबका उचित उत्तर गोपाल की मा ने दिया, और गुलाबो बुआ ने उनकी सत्यता की साक्षी दी। गोपाल की मा को काम बता दिया गया—शाक काटकर पहले बनाओ, फिर पूरियाँ बना लो, इतना आटा गूँधो, अपने लिये पराठे बना लेना।

गुलाबो चली गई, और गोपाल की मा ने चौके का भार सँभाला। बड़ी पवित्रता और स्वच्छता से रसोई बनाई। सेठ-सेठानी सब प्रसन्न हुए। जब सब खा चुके, तो पाँच पूरियाँ बच रहीं। बड़ी सेठानी से पूछकर गोपाल की मा ने उन्हें एक कटोरदान में रख दिया, और अपने और गोपाल के लिये पराठे बनाकर खा लिए। आज बहुत दिन बाद गोपाल की मा ने भर-पेट भोजन पाया। रात को सोने के लिये मा-बेटों को एक चारपाई दे दी गई। चदरा उसके पास था ही, बच्चे को लेकर चुपचाप सो रही। प्रातःकाल सबसे पहले उठी। नित्य-कर्म से छुट्टी पाकर सेठानी से काम पूछा। सेठानी ने कहा—"उर्द की दाल भिगो दो, फिर उसे धोकर, शाक बना लेने के बाद पकाना। बच्चों के लिये कुछ नाश्ते का सामान पहले बना लो। कहारिन चौका-बर्तन कर गई।"

महराजिन ने सेठानी के कहने के अनुसार सारा काम बड़ी फुर्ती और प्रसन्नता से कर डाला। दोपहर का कच्चा भोजन बनाने में भी महराजिन पास हो गईं। शाम को जब बड़े-छोटे दोनों सेठ घर आए, तो पूछने पर बड़ी सेठानी ने कहा—"पहले दिन तो सभी मन से काम करते हैं, ज़्यादा काम करते हैं, शऊर से काम करते हैं, पर दूसरे-तीसरे दिन से वही टके गज़वाली चाल हो जाती है। अभी क्या हुआ, महराजिन को आज पहला दिन है। 'तेल देखो, तेल की धार देखो।' जुम्मा-जुम्मा आठ दिन तो होने दो, हमारे घर की रोटी

न रंगत लाए, किसी के कहने-सुनने का प्रभाव न पड़े, तब समझना कि महराजिन ठीक हैं।"

गोपाल की मा ने मौन धारण किए हुए अपने काम में चित्त लगाया, उसने किसी के कहने पर कुछ ध्यान न दिया, 'अपने काम से काम, पीछे भगवान् का नाम'-वाली लोकोक्ति चरितार्थ की।

---

[४]

बड़े सेठ का नाम मथुरादास था। उम्र कोई ४० के लगभग होगी। छोटे सेठ द्वारकादास ३३ वर्ष के थे। बड़े सेठ के एक लड़की, सबसे बड़ी संतान, १३ वर्ष की है, उससे छोटा बच्चा हीरालाल ८ वर्ष का। इसके बाद दो बच्चे होकर मर गए। छोटे सेठ का बच्चा मोतीलाल छ वर्ष का है, दूसरा एक वर्ष का। बड़े सेठ सर्राफ़े की दूकान पर बैठते हैं। छोटे सेठ अनाज का व्यापार करते हैं। घर में जब कोई वस्तु बाहर से आती है, तो नौकर लाता है, नहीं तो घर में कोई बाहरी व्यक्ति नहीं आता। दोनो भाइयों में खूब प्रेम है। बड़ी सेठानी साधारण घर से आई हैं, पर छोटी सेठानी का मायका इस घर से भी अधिक धनवान् है। कदाचित् इसी कारण बड़ी सेठानी छोटी-छोटी बातों पर, ज़रा-ज़रा-सी चीज़ पर ध्यान देती हैं। छोटी सेठानी ने आज तक किसी से कटु शब्द नहीं कहा, महराजिन और कहारिन से भी प्रेम-पूर्वक वार्तालाप किया।

सेठ मथुरादास का मकान बड़े सुंदर ढंग का बना है। बीच में लंबे-चौड़े आँगन के पश्चिम, उत्तर और दक्षिण की ओर दो-दो बड़े कमरे हैं। उनके आगे बरांडा है। पूर्व की ओर एक कोने पर पाख़ाना ऐसे ढंग से बना है कि बाहर से साफ़ होता है। पाख़ाने में धूल या राख से भरा पात्र रक्खा रहता है। जो पाख़ाना से छुट्टी पाए, फ़ौरन् उस पर धूल या मिट्टी डाल दे। इस कारण पाख़ाने की बदबू घर में कभी मालूम नहीं हुई। उस पर हर आठवें दिन मेहतरानी पाख़ाने को फ़िनायल से धोकर साफ़ कर देती है। पाख़ाने

को जाने की गली के बाद स्नानागार है। उसको बग़ल में पक्का कुआँ है, जिसकी तीन फ़ीट ऊँची जगत है। कुआँ और स्नानागार की भूमि ऐसी है कि एक बूँद पानी नहीं ठहरता। कुएँ के दक्षिण की ओर मुख्य द्वार के जाने का मार्ग है। उसके बाद रसोई-घर है। ऊपर धुआँ निकलने का प्रबंध है। ईंधन धरती से एक फ़ुट ऊँचे टाँड़ पर रक्खा जाता है, जिससे उसके नीचे की सफ़ाई भले प्रकार हो सके। रसोई-घर के बाद एक चार गज़ लंबी कोठरी है। उसके सामने बरांडा है। बस, यही कोठरी और बरांडा गोपाल के रहने को दिया गया। गोपाल की मा बच्चे को चिपटाकर पहले दिन बहुत सजग होकर सोई। दूसरे दिन भी सावधानी रक्खी, पर धीरे धीरे उसे ज्ञात हो गया कि इस घर में मेरा धर्म सुरक्षित है। दोनों सेठ बाल-बच्चेवाले हैं। रात्रि को दोमंज़िले पर सोते हैं। नीचे गोपाल और उसकी मा को छोड़कर कभी-कभी हीरालाल, उसकी बहन रत्नावली और मोतीलाल आदि सो जाते हैं, नहीं तो गोपाल की मा 'मेरा गोपाल, गुदड़ी का लाल' कहती हुई गोपाल को सुलाकर स्वयं भी सो जाती है।

घर में स्वच्छता का प्राधान्य था, ज़रा-सा टुकड़ा गिरा, और सबसे पहले जिसकी दृष्टि उस पर पड़ी, उसी ने उठाकर कूड़ेदान में डाल दिया। घर में तीन-चार बार झाड़ू लगाई जाती है। चौके की स्वच्छता पर विशेष ध्यान रहता है। मक्खियों के बचाव के लिये खिड़कियाँ पड़ी हुई हैं। भोजन जालीदार छोटी-सी अलमारी में रक्खा जाता है। महराजिन से कह दिया गया कि चौके को ख़ूब स्वच्छ रक्खें।

थोड़े दिनों के व्यवहार से ही दोनों को दोनों पसंद आए। सेठानियों ने महराजिन की परखा—चौके में एक दिन बड़ी सेठानी चुप के से रुपया रखकर चली आईं। गोपाल की मा ने देखते ही कहा—"रुपया रह गया है।"

जान-बूझकर तश्तरी में मिठाई के टुकड़े गिनकर रक्खे गए। दूसरे दिन ज्यों-के-त्यों मिले। भाँति-भाँति से महराजिन की परीक्षा ली गई, जब किसी भी विषय में वह फ़ेल नहीं हुई, तब उसको विश्वास-पात्र होने का सर्टीफ़िकेट दिया गया।

गोपाल की मा को एक अड़चन प्रतीत हुई। सबेरे का नाश्ता बाँटते समय गोपाल कौरे मुँह ताकते खड़े रह जाते थे। गोपाल की मा ने एकांत में गोपाल को समझा दिया कि जिस समय नाश्ता बाँटा जायगा, मैं तुम्हें संकेत कर दिया करूँगी, तुम चुपचाप बाहर चले जाया करो। दूसरे ही तीसरे दिन से यह क्रिया होने लगी। कोई आठ-दस दिन बाद नाश्ता बाँटते समय छोटी सेठानी ने देखा कि गोपाल बाहर जा रहा है, तो पुकारकर कहा—"गोपाल, तू भी ले।"

गोपाल मा की ओर देखने लगा। मा ने कहा—"छोटी जीजी, रहने दो। स्वभाव बिगड़ जायगा, और मुझ ग़रीब को कष्ट होगा।"

छोटी सेठानी ने कहा—"बच्चा है, सब खाते हैं, और वह मुँह ताकता है, या बाहर भाग जाता है। जब घर में रहता है, तब उसे भी कुछ मिलना चाहिए।"

इतना कहकर गोपाल को एक लड्डू देने लगीं। गोपाल ने लड्डू न लिया, और कभी छोटी सेठानी का, कभी मा का मुँह ताकने लगा। मा ने कहा—"ले लो।" पर गोपाल इच्छा रखते हुए भी मा की एकांत शिक्षा को न भूला था। जब मा ने अपने हाथ में लड्डू लेकर गोपाल को दिया, तब भी गोपाल ने बड़े संकोच से लेकर खाया।

छोटी सेठानी को गोपाल का यह व्यवहार अच्छा लगा, और उसे गोपाल पर कुछ कृपा-संयुक्त प्रेम हो गया। गोपाल पाँच वर्ष का था, मोती छ वर्ष का और हीरा आठ वर्ष का, पर सेठ लोग

दुबले-पतले, कोमल ठहरे, गोपाल का हाड़ चौड़ा था। १५-२० दिन सेठ के घर का भोजन खाकर चेहरा दमकने लगा। वह हीरा और मोती से देखने में छोटा था, पर शक्ति और साहस में बड़ा था। गोपाल मोती को छोटे दद्दा और हीरा को बड़े दद्दा कहता था। बच्चे बड़ी सेठानी को बड़ी अम्मा और छोटी सेठानी को छोटी अम्मा कहते थे। गोपाल भी वही कहने लगा। इसी प्रकार छोटे सेठ को छोटे लाला और बड़े सेठ को बड़े लाला कहा जाता था। गोपाल की मा बड़ी सेठानी को बड़ी जीजी और छोटी सेठानी को छोटी जीजी कहती थी।

मोती और हीरा को पढ़ाने के लिये मास्टर आता था, और सवेरे आठ बजे से दस बजे तक पढ़ाता था। बच्चे बच्चों में खेलते हैं, इसलिये गोपाल भी वहीं जा बैठता। न क़लम न दावात, न बस्ता न किताब। आँखों और कानों से शिक्षा पाता। मास्टर जो बतलाते, उसे झट याद कर लेता। हीरा मंद-बुद्धि थे, मोती साधारण बुद्धि, पर गोपाल तीव्र-बुद्धि था। तीन-चार दिन मास्टर के पास बैठने के बाद गोपाल ने मा से कहा—"मा! खरिया और पट्टी ले दो, मैं भी पढ़ूँगा।"

"ऐसे ही भाग्य होते, तो.....!" कहकर मा चुप हो रही। दूसरे दिन गोपाल ने फिर वही प्रश्न किया। बड़े प्यार से कहा—"मा, खरिया-पट्टी ले दो, मैं पढ़ूँगा।"

मा ने कहा—"बेटा! मेरे पास खरिया और पट्टी कहाँ है?"

गोपाल बोला—"तो किसके पास है?"

मा ने कहा—"मैं क्या जानूँ, किसके पास है?"

गोपाल ने कहा—"तो छोटे दद्दा और बड़े दद्दा को कौन देता है?"

मा ने कहा—"उन्हीं से जाकर पूछ कि कौन देता है।"

गोपाल दौड़ा-दौड़ा गया, और मोती से पूछा—"छोटे दद्दा, तुम्हें खरिया-पट्टी कौन देता है ?"

मोती ने कहा—"छोटी अम्मा।"

गोपाल दौड़कर घर गया, और छोटी सेठानी से कहा—"छोटी अम्मा ! मुझे भी खरिया और पट्टी दो, मैं भी पढ़ूँगा।"

छोटी अम्मा ने कहा—"अच्छा, कल हूँढ़ दूँगी।"

दूसरे दिन गोपाल खरिया-पट्टी लेकर मास्टर के पास गया। मास्टर ने जो बताया, झट याद कर लिया। तीन-चार महीने में गोपाल मोती और हीरा के बराबर पढ़ाई में हो गया। मास्टर चतुर था, उसने कहा—"पढ़ेगा, तो गोपाल। ये मोती और हीरा तो बस पत्थर ही रहेंगे।"

मास्टर धूल में अक्षर बनवाता, किंडर गार्टन से बनवाता, चार्ट में से पहचान कराता। हवा में उँगली से बनवाता। गोपाल सबसे आगे था। अब जो कोई भूलता, तो गोपाल बतलाता था। गोपाल को हीरा की अपेक्षा मोती से अधिक प्रेम था। हीरा ने एक दिन कह दिया था—"उल्लू का पट्ठा।" बस, तभी से गोपाल हीरा की अपेक्षा मोती पर अधिक प्रेम रखने लगा।

कुछ दिन घर पर पढ़ने के बाद लड़कों को हाईस्कूल में भर्ती कराया गया। मोती और हीरा, दोनो एक ही दर्जे में भर्ती हुए, और गोपाल को भर्ती नहीं कराया गया। मैट्रिक तक सैकड़ों रुपया ख़र्च पड़ेगा। दूसरे दिन हीरा और मोती पढ़ने नहीं गए। शाम को छोटे लाला ने पूछा, तो कहा—"गोपाल नहीं गया, इसलिये हम भी नहीं गए।"

अब क्या हो ? बाल-हठ के सामने युवा-हठ ने हार मानी, और विवश होकर दूसरे दिन गोपाल को भी भर्ती करा दिया गया। तीनो बच्चे प्रातः नाश्ता करके प्राइवेट मास्टर के पास पढ़ते हैं,

फिर भोजन करके स्कूल जाते हैं। शाम को चार बजे छुट्टी होने पर साथ-साथ घर आकर कुछ खाते हैं, फिर खेलते हैं।

एक दिन पड़ोस का एक लड़का रामू खेलते-खेलते मोती से उलझ पड़ा, और वह शीघ्र ही उसे पटक देता कि गोपाल दौड़कर उससे भिड़ गया। इस बीच उसने मोती को दो जगह नोंच लिया। अब जब रामू और गोपाल भिड़ गए, तो मोती ने रामू को पीछे से दो-चार हाथ लगा दिए। हीरा अलग खड़ा-खड़ा देखता रहा। किसी राह-चलते ने लड़ाई बंद कराकर इन बच्चों को अलग किया। छीना-झपटी में रामू की क़मीज़ फट गई। घर गया, तो उसकी मा बच्चे के साथ दौड़ी आई, और आते ही महराजिन से बोली—"तुम्हारा लड़का राँड़ का साँड़ है, किसी को निबाहने नहीं देता। देखो, मेरे रामू की क़मीज़ फाड़ डाली, और मारा।"

रामू कहने लगा—"मोती ने मारा, और गोपाल ने क़मीज़ फाड़ डाली।"

रामू की मा मोती की शिकायत न करना चाहती थी, पर छोटे बच्चे इन राजनीतिक दाँव-पेचों को क्या जानें? रामू ने सच बात कह दी। इससे पहले ही मोती और गोपाल ने सारा मुक़दमा पेश कर दिया था। गोपाल की मा ठहरी 'निबल की जोरू सबकी भाभी।' छोटी सेठानी ने कहा—"रामू की मा! मैं सब हाल सुन चुकी हूँ। रामू ने पहले मोती को मारा, जब गोपाल बचाने आया, तब रामू गोपाल से उलझ पड़ा। इसी उलझन में उसकी क़मीज़ फट गई। गोपाल का कोई क़सूर नहीं है। रामू को मना कर दो कि हमारे बच्चों के साथ न खेले, और अगर खेले, तो लड़ाई न करे।"

मोती बोला—"जो गोपाल मुझे न बचाता, तो रामू बहुत मारता, और बड़े दद्दा ने रामू से कुछ नहीं कहा।"

छोटी सेठानी ने कहा—"अच्छा, अच्छा, अब हो गई लड़ाई, आगे को सुलह से खेला करो।"

इस घटना से छोटी सेठानी का हृदय गोपाल की ओर झुका, उन्होंने मन में तय कर लिया कि गोपाल मैट्रिक तक पढ़ेगा। हीरा और मोती के साथ गोपाल का रहना बहुत आवश्यक है।

[५]

रत्नावली १५ वर्ष की हो गई। सेठ लोगों को उसके ब्याह की चिंता है। कहीं पंडितजी भेजे गए, कहीं मुनीमजी। कहीं छोटे सेठ गए, कहीं बड़े सेठ। दो लड़के पसंद किए गए, एक कानपुर में, दूसरा फ़र्रुख़ाबाद में। कानपुरवाले लड़के की उम्र १६ वर्ष की है, दर्जे में पढ़ता है, स्वास्थ्य अच्छा नहीं, पर घर पचास लाख का कूता जाता है। फ़र्रुख़ाबादवाला लड़का १६ वर्ष का है, स्वास्थ्य अच्छा, पर घर ४-५ लाख से ज़्यादा का नहीं है। घर पर पीतल के बर्तनों का व्यापार होता है। बड़े सेठ का झुकाव कानपुरवाले लड़के की ओर है, पर बड़ी सेठानी का नहीं। छोटे सेठ को फ़र्रुख़ाबादवाला घर-वर पसंद है, कानपुर का नहीं। दूकान से आकर शाम को नित्य ही रत्नावली के ब्याह की चर्चा होती है, पर बात किसी घाट नहीं लगती। एक दिन बड़ी सेठानी ने कहा—"गोपाल की मा! इन दोनों लड़कों में तुम किसको अच्छा समझती हो?"

गोपाल की मा ने कहा—"सेठानी! हम निर्धन, अनाथ, इन बड़ी बातों को क्या समझें?"

छोटे सेठ ने कहा—"इसमें निर्धनता का प्रश्न नहीं। जो बात तुम्हारी समझ में ठीक जँचे, वह कह दो।"

गोपाल की मा ने कहा—"छोटे लाला! हमने बात कही, और आपको पसंद न आई, इससे चुप रहना ही ठीक है।"

छोटे सेठ ने कहा—"न पसंद आएगी, तो न मानेंगे। इसमें चुप रहने की क्या बात?"

बड़े लाला की बात को घर के लोग टालते न थे। पर अब की बार और तो और, बड़ी सेठानी ने ही विरोध किया। पर और लोग स्पष्ट रूप से कुछ कहना न चाहते थे, इसीलिये शायद गोपाल की मा को इस झमेले में घसीटा गया। इधर गोपाल की मा व्यर्थ में कुछ कहकर अपनी रोटी पर आँच आने न देना चाहती थी। इसलिये छोटे सेठ के इतना आश्वासन देने पर भी जब उसका मुँह न खुला, तो छोटी सेठानी ने धीरे से कहा—"जो बात ठीक समझती हो, कह दो।"

छोटी सेठानी गोपाल पर कृपा रखती थीं। उसका कारण चाहे जो कुछ हो। इसी से गोपाल की मा औरों की अपेक्षा छोटी सेठानी का अधिक ध्यान रखती थी। अब जो छोटी सेठानी ने आश्वासन दिया, तो गोपाल की मा का साहस बढ़ा। जी कड़ा करके कहा—"मेरी सम्मति में···।"

आगे ज़बान बंद हो गई, दफ़ा १४४ लग गई। छोटे सेठ ने कहा—"मुँह-आई बात रोकना नहीं चाहिए। फिर इस बात के कहने का तुम्हें कोई दंड थोड़े ही दिया जायगा। बात ठीक होगी, मान लेंगे, न जँचेगी, न मानेंगे।"

गोपाल की मा ने कहा—"रत्नावली १५ वर्ष की हो गई, लड़का इससे सवाया होना चाहिए। लड़का मुख्य चीज़ है, इसलिये उसका स्वास्थ्य और स्वभाव अवश्य देखना चाहिए। रहा धन, सो पचास लाखवाले भी वही रोटी-दाल खाते हैं, जो ४-५ लाखवाले खाते हैं, सोना-चाँदी कोई नहीं खाता। पचास लाखवाले का घर ज़रा ज़्यादा अच्छा होगा, चार-छ नौकर ज़्यादा होंगे, पर हमें तो सबसे पहले धन न देखकर लड़का देखना चाहिए। आज धन है, कल जाने क्या हो? आज ग़रीबी है, लड़के योग्य हुए, तो अमीरी आगे खड़ी है; लड़के अयोग्य हुए, तो अमीरी को ग़रीबी में बदलते

देर नहीं लगती। इसलिये मैं फ़र्रुख़ाबादवाले लड़के को पसंद करती हूँ।"

गोपाल की मा थी तो महराजिन, घर की एक अदना नौकर; पर लाख रुपए की बात कह दी। छोटे लाला के मन में भी यही था, पर बड़े भाई के लिहाज़ से कहने में संकोच करते थे। छोटी सेठानी बड़े लाला के सामने बोलती ही न थीं। आज गोपाल की मा ने जज बनकर ऐसा निर्णय किया कि सबको पसंद आया। बड़े लाला ने साँस भरकर कहा—"जब सबकी यही राय है, तो फ़र्रुख़ाबाद-वाले लड़के को रोक देना चाहिए, और ब्याह की तैयारी करनी चाहिए।"

शुभ सायत में रत्नावली का ब्याह हुआ। ख़ूब देना-लेना हुआ। खान-पान और आदर-सत्कार में कोई बात उठा न रक्खी गई। उधर से भी सभ्यता-पूर्ण व्यवहार हुआ। घर के प्रबंध में गोपाल की मा ने ऐसा कौतुक किया कि सब दंग रह गए। प्रत्येक वस्तु इस ढंग से रक्खी थी कि जब माँगी गई, तुरंत मिली। रसोई का प्रबंध हलवाई के सिपुर्द था। शाक-भाजी घर पर गोपाल की मा बनाती थी। रात-दिन की दौड़-धूप से गोपाल की मा तनिक भी न विचलित हुई। पर इधर बरात बिदा हुई, उधर गोपाल की मा को ज्वर आ गया। दौड़ते-दौड़ते पैर सूज गए थे, काम करते-करते थकान से सारा बदन चूर-चूर हो गया। उठने की शक्ति न रही। चौबीस घंटे बाद ज्वर उतरा, और एक हफ़्ते बाद थकान। गोपाल रात-दिन मा की सेवा में तत्पर रहा। दोनो सेठानियों ने भी ख़ूब खोज-ख़बर रक्खी, वैद्यजी को दिखाया, स्वयं भी देख-भाल करती रहीं। तबियत ठीक होते ही गाड़ी उसी ढंग से फिर चलने लगी।

× × ×

६वें दर्जे में पहुँचकर हीरालाल फ़ेल हो गए, मोतीलाल का दर्जे में १७वाँ नंबर और गोपाल का अव्वल नंबर रहा। गोपाल को पाँच रुपए के साथ तीन पुस्तकें भी पारितोषिक में मिलीं। अब गोपाल इतना समझदार हो गया था कि उसने रुपए और पुस्तकें घर आकर मा को न देकर छोटी अम्मा को दीं। छोटी सेठानी ने गोपाल की पीठ ठोंकी, और कहा—"किसी दिन मा को सुख देगा।"

रुपए और किताबें छोटी सेठानी ने गोपाल की मा को दीं। उसने कहा—"मेरे पास रखने को अकेला पेट है, उसमें ये चीज़ें आ नहीं सकतीं।"

सेठानी ने सब वस्तुएँ रख लीं। जब गर्मियों की छुट्टी के बाद स्कूल खुला, तो ज्ञात हुआ कि गोपाल को ८) मासिक छात्र-वृत्ति मिलेगी! अब ऊपर के ख़र्च के लिये ये रुपए हो गए। भोजन-वस्त्र सेठ देते ही हैं। दसवाँ दर्जा मोतीलाल ने सेकंड डिवीज़न में पास किया, पर गोपाल यू० पी०-भर के मैट्रिक के लड़कों में फ़र्स्ट आया। उसे एफ़० ए० में पढ़ने को दो वज़ीफ़े मिले—एक १५) मासिक, दूसरा ८) मासिक। पहला वज़ीफ़ा किसी सेठ ने अपने लड़के के विवाहोत्सव में दिया था। हीरालाल नवाँ दर्जा पास करके दसवें में आए। मोतीलाल और गोपाल ने आगरा-कॉलेज में नाम लिखाया। दोनों ने क्या-क्या विषय लेंगे, यह पहले ही निश्चय कर रक्खा था।

गोपाल को प्रतिवर्ष छात्र-वृत्ति मिलती रही, पर वह कॉलेज के ख़र्च को पर्याप्त न होती थी। सेठ लोग अपने 'छमाही' खाते में से कुछ दे दिया करते थे। मोतीलाल के साथ रहने से भी बड़ा सहारा था। गोपाल पढ़ने में बहुत तेज़ था। शरीर ख़ूब हृष्ट-पुष्ट था। खेल खेलता, तो लुत्फ़ आ जाता। सेवा-समिति में नाम

लिखाकर कभी किसी मेले में काम किया, कभी किसी देहात के गाँव में ग्राम-सुधार के काम से प्रोफ़ेसरों के साथ गया, पर मोतीलाल को प्रत्येक काम में साथ रखता था। यों तो छुटपन से ही गोपाल और मोतीलाल में प्रेम था, स्कूल में पढ़ने पर वह प्रेम पल्लवित हुआ, और कॉलेज में पढ़ने पर उसमें सुगंधित पुष्प लगे। मोतीलाल अपने छोटे भाई पन्नालाल पर इतना प्रेम न करते थे, जितना गोपाल पर। गोपाल के शील-स्वभाव और योग्यता के प्रशंसक प्रोफ़ेसर लोग थे। उस प्रशंसा को सुनकर मोतीलाल फूल जाते, और समझते, मानो मेरी ही प्रशंसा हो रही है।

हीरालाल ने दसवाँ दर्जा पास करके, बाप की दूकान पर बैठकर उनका हाथ बटाया। बाप और चचा ने उनका ब्याह कर दिया। पर मोतीलाल ने चुपके से मा से कह दिया—"छोटी अम्मा! बी० ए० से पहले मेरे ब्याह का नाम न लेना।"

और गोपाल की मा पेट से चाहती थी कि मेरा गोपाल पढ़-लिखकर नौकर हो जाय, और ब्याह होकर बहू घर आए, और मैं ·····। पर अभी तो दिल्ली दूर है, पढ़ाई में ही बहुत कसर है। गोपाल कहता है—"डॉक्टर बनूँगा।" आधी उम्र तो पढ़ाई में ही निकल जायगी। पर—"उत्पद्यन्ते विलीयन्ते दरिद्राणां मनोरथाः" दरिद्र के मनोरथ पैदा होकर लीन हो जाते हैं, वे क्रियात्मक रूप या तो पाते ही नहीं, या बहुत कम पाते हैं।

दिन जाते देर नहीं लगती, समय-चक्र किसी क्षण भी नहीं रुकता, रात-दिन बराबर घूमा करता है। मोतीलाल और गोपाल बी० ए० और बी० एस्-सी० की परीक्षा देकर घर आए। गोपाल का फ़र्स्ट डिवीज़न में पास होना निश्चित था। वह युनिवर्सिटी-भर में फ़र्स्ट आएगा। मोतीलाल के भी सेकंड या थर्ड डिवीज़न में पास होने की आशा है। गोपाल मेडिकल कॉलेज, लखनऊ में भर्ती

होने की तैयारी कर रहा है। युनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसरों की गोपाल पर परम कृपा थी। वे लोग चाहते थे, गोपाल एम्० ए० करके युनिवर्सिटी की सेवा करे, पर गोपाल को डॉक्टर बनकर जनता की सेवा करने की धुन थी। मोतीलाल बी० ए० में थर्ड डिवीज़न में पास हुए, और गोपाल बी० एस्-सी० में सदैव की भाँति फ़र्स्ट आया। जब मोतीलाल ने गोपाल की मा से कहा—"गोपाल को अभी दो सौ रुपए की नौकरी मिल सकती है।" तो मा फूली न समाई। पर हृदय की प्रसन्नता को बाहर न प्रकट होने दिया। एकांत में गोपाल से कहा—"क्यों रे! दो सौ रुपए की नौकरी मिलती है, और तू करता नहीं?"

गोपाल ने कहा—"मा, अभी अधपढ़ा हूँ, पूरी तरह पढ़ लूँ, तब नौकरी मिलेगी। अभी कौन नौकरी देगा?"

मा ने कहा—"तो मोतीलाल झूठ कहता है?"

गोपाल ने कहा—"वैसे ही कह दिया है। मा, मैं तो अभी पढ़ूँगा।"

मा बेचारी क्या कहती? लड़का सयाना हुआ, फिर पढ़ने की इच्छा है, पढ़े। पर अब ख़र्च कहाँ से आए? पाँच वर्ष का कोर्स है। ६०)-७०) महीने से कम का ख़र्च किसी तरह नहीं। फिर, गोपाल-जैसा मितव्ययी इतने में काम चला ले, दूसरे को सवा सौ-डेढ़ सौ चाहिए। गोपाल न सिनेमा देखता है, न और कोई व्यसन रखता है। सादा जीवन, ठोस कार्य, यही उसका मूल-मंत्र है।

छोटे सेठ से कहा। उन्होंने कहा—"बड़े भाई साहब जानें।" बड़े भाई साहब से कहा, तो उत्तर मिला—"बहुत पढ़ लिया, अब घर बैठो।"

अब क्या हो? मा के पास चार पैसे नहीं कि विष खा ले। इस घर से उसने कभी कोई कामना नहीं की। आज बच्चा पढ़ने

को मचला है, तो क्या करे ? छोटी अम्मा से कहा। उन्होंने बड़ी की ओर संकेत कर दिया। बड़ी से कहा, तो उत्तर मिला—"महराजिन का लड़का बी० एस्-सी० पास हो गया यही क्या थोड़ा है ?"

किसी ने उँगली न रखने दी। मा से क्या कहता ? ख़ूब जानता था कि मा का सर्वस्व 'गोपाल' है। अब गोपाल की चिंता सवार हुई। खिली हुई मुख-मुद्रा उदासीनता में परिणत हो गई। हँसना भूल गया। न खाना अच्छा लगता है, न खेलना। अठारह वर्ष का लड़का संसार-सागर की हिलोरों के थपेड़े खा रहा है—न नाव है, न माँझी। मा ने समझाया—"बेटा ! पढ़ लिया, ग़रीब का पढ़ना ही क्या ? तू तो इतना पढ़ गया कि खाने-भर को पैदा कर सकता है, फिर क्यों सिर पर नई आफ़त मोल लेता है ? जाने दे आगे का पढ़ना। नौकरी कर ले, और रोटी खा।"

गोपाल ने कहा—"मा, हिमालय हिल जाय, सागर सूख जाय, सूर्य-चंद्र अपना मार्ग छोड़ दें, पर गोपाल पढ़ेगा, और ज़रूर पढ़ेगा। भीख माँगेगा, मज़दूरी करेगा, पर पढ़ेगा ज़रूर।"

---

[६]

किसी ने कोई सहारा नहीं दिया, पर गोपाल मेडिकल कॉलेज, लखनऊ में भर्ती हो गया। किसी ने ठीक कहा है—"किसी काम का दृढ़ता-पूर्वक प्रबंध करना ही उसको आधा कर लेना है।" पहला वर्ष प्रारंभ हुआ। तीन महीने किसी प्रकार लस्टम-पस्टम कटे। दशहरे की छुट्टी हुई, पर गोपाल घर न जाकर एक अख़बार के ऑफ़िस में पहुँचा। दो घंटे काम करने के पचास रुपए महीना तय हुए। दशहरे की छुट्टियों के लिये विशेष काम और विशेष वेतन। छुट्टी-भर उसी ऑफ़िस में काम किया, और पचास रुपए पाए। अब दो घंटे ऑफ़िस में काम कर जाता है, और पचास रुपए महीने में मिल जाते हैं। कॉलेज की छुट्टी के दिन पूरा समय ऑफ़िस को देकर चार-पाँच रुपए कमा लेता है। ऑफ़िस का मैनेजर बड़ा चतुर था। गोपाल के काम को देखकर प्रसन्न हुआ, और कहा—"बाबू! तुम हमारे यहाँ असिस्टेंट मैनेजर हो जाओ, तो दो सौ रुपए मासिक देंगे।"

गोपाल ने अपनी ग़रीबी नहीं छिपाई, और सारा कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया। मैनेजर बहुत प्रभावित हुआ, और कहा—"मैं आपके लिये क्या कर सकता हूँ?"

गोपाल ने कहा—"यही कि मुझे ऑफ़िस में काम देकर सहायता कीजिए।"

मैनेजर ने गोपाल के दो घंटे के ७०) कर दिए। अब गोपाल को एक अच्छा सहारा मिल गया। छुट्टियों में पूरे दिन काम करते

थे। इस प्रकार कुल मिलाकर सौ रुपए का औसत पड़ जाता था। पर इसमें एक बात यह हुई कि इटावे जाना बंद हो गया। गोपाल तो मा को कार्याधिक्य में भुला सकता था, पर मा तो एक क्षण को भी न भुला सकती थी। गोपाल घर पर बहुत कम पत्र भी भेजता था, न उसको अवकाश था, न पैसा। जब बड़े दिन की छुट्टी में भी घर न गया, तब मा घबरा उठी। मोतीलाल द्वारा पत्र भिजवाया, और कहा—"मा को एक दिन को दिखाई दे जाओ।"

उत्तर आया—"अवकाश नहीं है। गर्मियों की छुट्टी में एक-दो दिन को आऊँगा।"

गर्मियाँ आईं, और मैनेजर ने अपने अखबार की ओर से रिपोर्टर बनाकर गोपाल को शिमला भेजा, जहाँ सेंट्रल असेंबली का अधिवेशन हो रहा था। गुप्त बातें मैनेजर ने समझा दीं।

गोपाल दस महीने बाद घर आया, मा के पैर छुए, और आशीर्वाद माँगा कि चार वर्ष के लिये समझ लो कि गोपाल मर गया। गोपाल के लिये यह वाक्य साधारण था, पर मा के कलेजे से कोई पूछे। मा ने धोती में मुँह छिपाकर आँखों से मोती बिखेर दिए। गोपाल ने समझाया—"मा, मैं अपनी बात से हट नहीं सकता। धीरज धरो, जितने वर्ष बीते हैं, बस, उतने ही महीने और काट लो। कष्ट के बाद ही तो सुख मिलता है, और उसी सुख का मूल्य होता है, जो दुख सहने के बाद मिले।"

मा ने कहा—"तू जानता है, मैंने कितना दुःख सहा है?"

गोपाल बोला—"कल्पना करता हूँ, पर ठीक नहीं जानता। पर अब तुझे क्या दुःख है? खाना, कपड़ा, रहने को मकान, और क्या चाहती है?"

मा ने कहा—"तुझे कैसे पेट फाड़कर दिखाऊँ कि इसमें

कोयले-ही-कोयले भरे हैं। यह ठीक है कि खाना-कपड़ा मिलता है, पर मनुष्य खाना और कपड़ा ही नहीं चाहता ?"

गोपाल ने कहा—"तो फिर थोड़े दिन और धीरज धरो। सच बता मा, तू क्या चाहती है ?"

मा ने कहा—"निर्धन धन चाहता है, अकेला दूसरे साथी को चाहता है। मैं ये दोनों चीज़ें चाहती हूँ।"

गोपाल ने कहा—"मा, पहले हक़दार बन, फिर इच्छा कर। अभी तो तेरा गोपाल बीच धार में है, न इधर, न उधर। यदि पढ़ाया न होता, तो मज़दूरी करके पेट पालता। पढ़ाया है, तो फिर उस पार पहुँचने दो। चार वर्ष क्या होते हैं ? कल गया, और वर्ष-भर बाद आऊँगा। फिर तो तीन ही वर्ष रह जायँगे। मा, चुटकी बजाते तो वर्ष बीत जाते हैं। हाँ, निठल्ले का समय मुश्किल से कटता है। भगवान् न करे, कोई निठल्ला हो।"

दोनों सेठों ने देखा कि गोपाल के स्वास्थ्य या वेश-भूषा और रहन-सहन में कोई अंतर नहीं आया है, वरन् कुछ वृद्धि ही हुई है। बढ़िया होल्ड आल और अटैची केस के साथ केमरे का संयोग प्रकट करते हैं कि गोपाल कहीं कुछ है। छोटे सेठ ने कहा—"ख़र्च की ज़रूरत तो नहीं है ?"

गोपाल ने कहा—"सब आपका आशीर्वाद है।"

दूसरे दिन मा के रोकने पर भी गोपाल न रुका। मोतीलाल स्टेशन तक पहुँचाने गए, और सौ रुपए का नोट देकर बोले—"ख़र्च के लिये रख लो।"

गोपाल ने नोट न लिया, और कहा—"मज़े में काम चल रहा है। शिमला जा रहा हूँ। सेकंड क्लास का किराया और ढाई सौ रुपए तथा ऊपर का सारा ख़र्च मिलेगा। इंटर में यात्रा करूँगा।

इसी में बहुत-सा रुपया बचा लूँगा। फिर पैसे-के-पैसे पाऊँगा, काम-का-काम सीखूँगा।"

मोतीलाल ने फिर नोट आगे करके कहा—"रख लो।"

गोपाल ने मनीबेग से दो सौ रुपए के दो नोट दिखाकर कहा—"ये रिज़र्व में हैं, ख़र्च के लिये अलग हैं।"

मोतीलाल चुप हो रहे।

शिमला जाकर गोपाल ने ख़ूब योग्यता से कार्य किया, और असेंबली की ख़बरें पहले और ठीक-ठीक अख़बार को भेजीं। मैनेजर बहुत प्रसन्न था। लौटते समय दो दिन फिर इटावा ठहर गया। सारे घर का फ़ोटो लिया। मा का फ़ोटो अलग से भी लिया। अपना फ़ोटो शीशे में जड़वाकर मा को दिया, और कहा—"लो, रोज़ तेरे सामने रहा करूँगा।"

दो दिन रहकर तीसरे दिन गोपाल इटावे से लखनऊ चला गया। वेतन के अतिरिक्त मैनेजर ने ५०) पारितोषिक दिए। दूसरा वर्ष भी इसी प्रकार व्यतीत हुआ। तीसरे वर्ष में गोपाल के बीमार हो जाने से कुछ अड़चन हुई, पर कोई काम बिगड़ा नहीं। चौथा वर्ष बहुत सुंदर रहा। गोपाल बड़े अच्छे नंबरों से पास हुआ। अब पाँचवें वर्ष की परीक्षा शेष थी। गोपाल ने अख़बार से संबंध-विच्छेद करना चाहा, पर मैनेजर ने कहा—"जो कुछ भी कर सको, करते रहो। दो घंटे न सही, एक घंटा ही सही। पर संबंध-विच्छेद नहीं होना चाहिए।"

पाँचवें वर्ष गोपाल एम्० बी० बी० एस्० की उपाधि पाकर डॉक्टर बन गया। चीर-फाड़ और आँख के इलाज में उसको विशेष सर्टीफ़िकेट मिला। अब क्या करे? नौकरी की ढूँढ़-खोज की। कुछ दिनों एक धर्मार्थ अस्पताल में १००) महीने पर काम किया, फिर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के एक अस्पताल में जगह मिल गई, पर गोपाल को ये नौकरियाँ कुछ जँचीं नहीं।

सितंबर, १९३९ में द्वितीय महासमर प्रारंभ हो चुका था, और विशेषज्ञों की राय थी कि युद्ध चार-पाँच वर्ष से कम न चलेगा। जर्मनी देश-परदेश विजय करता चला आ रहा था। पौलैंड के बाद हालैंड, डेन्मार्क, नार्वे लेकर बेलजियम पर उसने अधिकार जमाया, और फ्रांस पर हल्ला बोल दिया। बिजली की तरह लपका, और शेर की तरह जर्मनी फ्रांस की छाती पर चढ़ बैठा। अब ब्रिटेन जो डेन्मार्क से हटा, तो उसकी फ़ौज अस्त-व्यस्त थी। इधर इटली ने फ्रांस की पीठ में छुरा घुसेड़कर एक नई मुसीबत भूमध्य सागर में पैदा कर दी। इटली उत्तर-पश्चिम की ओर से बेधड़क हो गया था। अब उसने उत्तरी आफ्रिका की ओर मुँह फेरा। ब्रिटिश फ़ौजें अस्त-व्यस्त थीं, पर अँगरेज़ों का साहस जगत्-प्रसिद्ध है। आख़िरी गोली तक अँगरेज़ सिपाही लड़ेगा। अँगरेज़ों ने हिंदुस्तानी सेना को मिस्री के मोर्चे के लिये भेजा। सेना के सब अंगों को आदमी और सामग्री दरकार थी। बड़े ज़ोरों की भर्ती हुई। सिपाही, रसोइया, कहार, भंगी, नाई, धोबी, डॉक्टर, नर्स और कंपाउंडर आदि सबकी भर्ती प्रारंभ हुई। रात-दिन नोटिस निकलने लगे।

डॉक्टर गोपाल ने इस मौक़े को ग़नीमत समझा। लखनऊ जाने पर उसे ज्ञात हुआ कि मेडिकल कॉलेज की ओर से एक पार्टी डॉक्टरों और नर्सों की फ़ौज में जायगी। डॉक्टर गोपाल भी उसी में भर्ती हो गए। अख़बारवाले मैनेजर ने कहा—"मैं उस समय आपको अच्छा वेतन दूँगा, जब आप भारत से बाहर जाकर युद्ध में सम्मिलित होंगे। अपना आदमी भी आपकी फ़ौज के साथ भेजने का प्रयत्न करूँगा।"

चार-पाँच महीने भारत में रहकर उनको बंदूक़ चलाने की तथा फ़ौज में किस प्रकार कार्य करना होगा, इसकी शिक्षा दी गई। इसके पश्चात् एक फ़ौज की टुकड़ी के साथ बंबई आए। एक हफ़्ते तक

फ़ौज का संगठन होकर ये लोग अदन के लिये रवाना हो गए। वहाँ से उत्तरी आफ्रिका की लड़ाई में इटली के साथ लड़ने लगे। डॉक्टर गोपाल ने न घर को ख़बर दी, न किसी से कुछ कहला भेजा। छ महीने युद्ध-क्षेत्र में रहने के बाद बाबू मोतीलाल को पत्र भेजा, और उसमें सारा विवरण लिख दिया।

गोपाल की मा उस दिन की बाट जोहती थी, जब बेटा नौकर होगा। मा साथ रहेगी, और अच्छे दिन देखेगी। कई दिन तक मा ने रोना जारी रक्खा, खाना नहीं खाया, पर हो क्या सकता है? गोपाल तो हज़ारों मील दूर उत्तरी आफ्रिका के रण-क्षेत्र में प्राण हथेली पर रक्खे कार्य-क्षेत्र में डटा है। घर से चिट्ठी गई, मा की विकलता लिखी गई, पर रात-दिन मौत के साथ खेलनेवाले वीरों पर इन बातों का क्या प्रभाव?

इधर अलबानियाँ की रण-भूमि पर इटली की हार हो जाने से अँगरेज़ों ने टारंटो पर आक्रमण कर दिया। ९ दिसंबर, ४० ई० की रात को ब्रिटिश सेना ने ७५ मील का रेगिस्तान पार करके सिदी बरीनी की ओर कूच किया। डॉक्टर गोपाल इस फ़ौज के साथ थे। उत्तरी आफ्रिका रेतीला प्रदेश है। बारहों मास गर्मी रहती है। भूमध्य सागर के किनारे का प्रदेश कुछ ठंडा है। ज्यों-ज्यों दक्षिण को चलो, रेत और गर्मी का राज्य है। भारतीय फ़ौजें गर्म देश की थीं, इसलिये यहाँ लाई गईं।

डॉक्टर गोपाल अभी २४ वर्ष के लड़के हैं, जवानी का जोश है, देह में फुर्ती है। दिन-रात काम में जुटा रहनेवाला दिल है। सदा के निर्भय, निपट ग़रीबी में पालन हुआ, अब किससे डरें? मौत से? किसलिये? वे-वे कष्ट भोगे हैं, जिनसे मौत हज़ार दर्जे अच्छी है। रण-क्षेत्र में इस उत्तमता से कार्य किया कि छोटे से लेकर बड़े तक सब प्रसन्न थे। एक बार बड़े साहब से दस गज़ की दूरी पर

बम फटा। डॉक्टर गोपाल ने साहब को एक गढ़े में धकेल दिया, और आप भी उसी में कूद पड़े। इस प्रकार दोनों बच गए। साहब की सहानुभूति दिनोंदिन डॉक्टर गोपाल के प्रति बढ़ती गई। डॉक्टर गोपाल अपना अस्पताल सँभालते, रसोई-घर की देख-रेख रखते, और साहब को सुंदर परामर्श देते। बड़े साहब की प्रसन्नता इस बात में थी कि डॉक्टर गोपाल ड्यूटी की पाबंदी का पूरी तरह निर्वाह करके दूसरे कामों को भी सुचारु रूप से संपादित करते हैं। बड़े साहब की कृपा ने छोटों की कृपा को बिना मूल्य ख़रीद लिया। छोटे-बड़े सब इसलिये भी प्रसन्न थे कि डॉक्टर गोपाल ने किसी की सेवा से मुँह न मोड़ा, हर किसी के साथ सहानुभूति प्रदर्शित की। कभी-कभी तो किसी सिपाही की पाइवेट चिट्ठी तक स्वयं ही लिख देते थे।

लखनऊ से अख़बार के मैनेजर का पत्र पहुँचा कि ख़बरें भेजना प्रारंभ कीजिए। डॉक्टर गोपाल ने बड़े साहब से पूछा। उसने कहा—"तुम रण-क्षेत्र में डॉक्टर बनकर आया है, या संवाद-दाता?"

डॉक्टर गोपाल ने समझाया—"जनता को सच्ची ख़बरें मालूम होंगी, हमारी फ़ौज का नाम बढ़ेगा।"

एक लेख लिखकर साहब को दिखाया। फ़ौज की वीरता का वर्णन पढ़कर साहब उछल पड़ा। बोला—"डॉक्टर गोपाल! ऐसे लेख तो ज़रूर छपने चाहिए।"

अब क्या था, भला फ़ौज का कमांडिंग ऑफ़िसर आज्ञा दे, और उस लेख को कोई रोक ले। लेख अख़बार में छपा। मैनेजर बहुत प्रसन्न हुआ। अब तो डॉक्टर गोपाल समय-समय पर लेख साहब को दिखाकर भेजने लगे। अख़बार में लेख हमारे विशेष संवाद-दाता द्वारा लिखे गए मानकर छापे जाते थे। पहले ही साल में वेतन

और अख़बार के पुरस्कार के रुपए सात हज़ार के लगभग पहुँच गए। सारा रुपया बाबू मोतीलाल के नाम आता था, और चिट्ठी में लिखा होता था—रुपया लाला जी के कर-कमलों में अर्पण।

जापान मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध धुरी राष्ट्रों में मिल गया। अब मित्र राष्ट्रों को एक नए युद्ध-क्षेत्र में मोर्चा लेना पड़ा। सोचा गया, भारत की फ़ौजें इस युद्ध में विशेष रूप से भाग लें। उत्तरी आफ्रिका से डॉक्टर गोपाल की फ़ौजी टुकड़ी भी जापान से मुक़ाबिला करने के लिये भेजी गई। इतनी शीघ्रता थी कि डॉक्टर गोपाल को इतनी छुट्टी न मिली कि मा के दर्शन कर लेते। सीधा जहाज़ सिंगापुर जा लगा। अब इस फ़ौज के सामने दूसरे प्रकार का शत्रु था। इटालियन इतने चतुर और वीर न थे, जितने जापानी। जापानियों ने हांगकांग लेकर सिंगापुर की ओर कूच किया। 'प्रिंस ऑफ़ वेल्स' और 'रिपल्स' नाम के प्रसिद्ध जंगी जहाज़ों को जापानी डुबा चुके थे। अब अजेय सिंगापुर की बारी थी। डॉक्टर गोपाल से अफ़सर बहुत प्रसन्न थे, इसलिये धीरे-धीरे वह कैप्टेन के पद तक पहुँच गए।

[७]

बड़े लाला मथुरादास मर गए। उनकी दूकान की देख-भाल हीरालाल ने की। पर वह ठहरे बुद्धू, उनकी सूझ-बूझ दूकान के लिये काफ़ी न समझी गई, तब मोतीलाल का छोटा भाई पन्नालाल, जो बी० ए० कर चुका था, उनकी सहायता के लिये दूकान पर बिठाया गया। धीरे-धीरे वही दूकान का सब कुछ हो गया। पन्नालाल पिताजी के साथ कारबार करते थे, पर उन्हें एक बात खटकती थी, मैं बी० ए० पास करके गेहूँ और दालों का व्यापार करूँ, तो इसमें बी० ए० की योग्यता का क्या उपयोग? साधारण मुनीम भी इस काम को कर सकता है। युद्ध लंबा चलेगा, इस भावना ने तैयारी को उत्तेजन दिया। हर चीज़ पर कंट्रोल लगाया गया। सरकार ने फ़ौज के सामान के लिये ठेकेदार माँगे। मोतीलाल ने इस समय से लाभ उठाने की चेष्टा की। इधर कलक्टर आदि अफ़सरों को अर्ज़ी दी, उधर सिफ़ारिश के लिये गोपाल को लिखा। समय आने पर मोतीलाल ठेकेदारी पाने में सफल हुए। दाल, शाक आदि का ठेका इनको दिया गया। रुपए की आवश्यकता बढ़ गई। डॉक्टर गोपाल का रुपया हर महीने बढ़ जाता था। लगभग दस हज़ार के हो गया था। उसको भी इस कारबार में लगा दिया गया, और सोचा गया, हर महीने आनेवाले डॉक्टर गोपाल के रुपए को ऊपरी कामों में लगाते रहेंगे। इस तरह व्यापार का चक्कर बँध गया। डॉक्टर गोपाल का वेतन, अख़बार के संवाद-दाता होने का पुरस्कार, इधर इकट्ठा हुए रुपए से ठेकेदारी का लाभ और व्यय एक पैसा

नहीं। डॉक्टर गोपाल सरकार से खाना-कपड़ा पाते थे, और उनकी मा मोतीलाल से। इस प्रकार डॉक्टर गोपाल का पैसा बेग से बढ़ने लगा। जब गोपाल की मा को इस पैसे का समाचार दिया गया, तो ऊपर मन से कहा—"मुझे पैसा नहीं चाहिए, मुझे मेरा गोपाल मिल जाय।" किंतु पेट से बहुत प्रसन्न हुई कि मैंने कहा था, धन चाहिए, और दूसरा साथी, सो धन तो मिल गया, अब मेरा गोपाल कुशल-क्षेम से आ जाय, तो उसका ब्याह करके बहू का मुँह देखूँ, और एक से दो हो जाऊँ।

अजेय और अभेद्य सिंगापुर का पतन हो गया। डॉक्टर गोपाल अपनी फ़ौज के साथ जापानियों के हाथ क़ैद हुए। पर सरकार की ओर से इसकी कोई सूचना घर न पहुँची, उल्टे मासिक वेतन प्रति-मास पहुँचता रहा। जो भारतीय सेना जापान के क़ब्ज़े में पहुँची, उसे संगठित करके नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने एक 'आज़ाद हिंद' सेना का संगठन किया। इस सेना ने भारत को आज़ाद करने तथा अँगरेज़ों को भारत से हटाने के लिये आसाम पर आक्रमण किया। इस सेना को शिक्षा तो अँगरेज़ों ने दी थी, पर सामान जापानियों ने नहीं दिया। विवश होकर कुछ रुपया इकट्ठा करके नेताजी ने इस फ़ौज के लिये गोला-बारूद और फ़ौजी सामान जुटाया। इधर अँगरेज़ी सेना के पास किसी बात की कमी न थी। आज़ाद हिंद सेना बड़ी वीरता से हथेली पर प्राण रखकर लड़ी। इंफ़ाल के युद्ध में जो टुकड़ी कर्नल शाहनवाज़ की अधीनता में युद्ध कर रही थी, डॉक्टर गोपाल उसके साथ थे। वह निरे डॉक्टर ही न थे, रोगियों की परिचर्या के अतिरिक्त कभी वह सिपाही का काम करते, कभी रसोइए का, कभी डाक का काम देखते। स्टोर की देख-भाल भी उन्हीं के ज़िम्मे थी। इस फ़ौज ने बहुत ज़ोर मारा, किंतु सफलता न पा सकी। ब्रिटिश-सूर्य में अभी तेज़ था। जापानियों की पराजय

हुई। और, यह सेना फिर अँगरेज़ों के हाथ में पड़ गई। एक बार जापानियों के हाथ में पड़ने पर इस सेना की दुर्गति हो चुकी थी, अब दूसरी बार फिर इसको संकटों का सामना करना पड़ा।

जब यह सेना जापान के हाथों क़ैद हुई थी, तब से बराबर इसके सिपाहियों का वेतन घरवालों को मिलता रहा, पर इंफ़ाल पर आक्रमण होते ही इन लोगों का वेतन बंद कर दिया गया। गोपाल के वेतन तथा अख़बार के पुरस्कार को मिलाकर अठारह हज़ार के लगभग रुपया मोतीलाल के पास पहुँचा। मोतीलाल इस रुपए को बराबर व्यापार में लगाकर बढ़ाते रहे। मा रुपया आने के समाचार से अब प्रसन्न नहीं होती। उसे तो अब गोपाल चाहिए। पर गोपाल तो अब सरकारी क़ैदी बनकर बरमा की जेल की हवा खा रहे हैं। मुख्य-मुख्य नेताओं पर मुक़दमा चलाया गया। बहुतों को गोली मार दी गई, पर डॉक्टर गोपाल के उस प्रधान अफ़सर की सिफ़ारिश से बरमा में उनको गोली नहीं मारी गई, जिसके साथ यह उत्तरी-आफ्रिका में काम कर चुके थे। कर्नल शाहनवाज, कैप्टन ढिल्लन आदि पर मुक़दमा चलाया गया। कांग्रेस ने इनकी पैरवी की, और ये लोग फाँसी के तख़्ते पर से जीते उतर आए। भारत में आने पर डॉक्टर गोपाल पर भी मुक़दमा चला, और उनको फाँसी की सज़ा दी गई। अपील में इनकी पैरवी डटकर हुई, और यह छूट गए। छूटने पर इन्होंने कर्नल शाहनवाज़ आदि आज़ाद हिंद के सैनिकों की भाँति कांग्रेस में काम करना स्वीकार किया, और देश को आज़ाद होने के प्रयत्न में सहायता पहुँचाई।

इटावे में गोपाल की मा की अजब दशा थी। जापान के हाथ क़ैद होने का समाचार तो किसी तरह उसे मिल गया, पर फिर तब तक कोई पता न चला, जब तक डॉक्टर गोपाल का हाल अख़बारों में न छपा। मोतीलाल ने गोपाल की मा को सारा हाल

बताया। मा चुपचाप रोने के सिवा क्या करती? जब गोपाल को दिल्ली के लाल क़िले की अँधेरी कोठरियों से छुटकारा मिला, तो बाहर आकर इन्होंने मोतीलालजी को तार दिया—"मैं छूट गया हूँ, और शीघ्र ही घर आ रहा हूँ।"

तार पाकर गोपाल की मा को मोतीलाल ने तुरंत ही सूचना दी, मा अवाक् रह गई। जिस बच्चे के मरने में बहुत थोड़ा संशय था, वह जीता-जागता आ रहा है। मा का हृदय ख़ुशी से बल्लियों उछल रहा था। कभी आँखों में आँसू भर लाती, कभी द्वार की ओर आँखें करके देखती कि गोपाल आ तो नहीं रहा है। कभी बाहर से आनेवाले बच्चों के मुख की ओर इस उत्सुकता से देखती कि वे अभी कहे देते हैं कि गोपाल आ गए। जिस रात की गाड़ी से गोपाल चलने को हुए, तो ६-७ घंटे पहले मोतीलाल को तार दिया—"रात को दो बजे दिल्ली से चलकर सबेरे ७-८ बजे इटावा पहुँचूँगा।"

तार पाते ही मोतीलाल ने गोपाल की मा को सूचना दी, और सबेरे स्टेशन जाने को तैयार हुए।

हीरालाल के एक लड़का और एक लड़की है, मोतीलाल के दो लड़के हैं। पन्नालाल का ब्याह हुए दो ही वर्ष हुए हैं। सेठानी के पोते आँगन में खेलते फिरते हैं। मोतीलाल स्टेशन पर ७॥ बजे डॉक्टर गोपाल को लेने के लिये पहुँच गए। गाड़ी कुछ लेट थी। एक-एक क्षण कठिनाई से कटता था। बार-बार सिर झुकाकर गाड़ी के आने की प्रतीक्षा करते थे। सिग्नल दे दिया गया, अब कुछ मिनटों की देर है। पिछला आधा घंटा जिस बेचैनी से कटा, ये थोड़े-से मिनट उससे भी अधिक उत्सुकता उत्पन्न कर रहे हैं। कभी घड़ी की ओर देखते हैं, कभी किसी से बात करते हैं कि समय कट जाय। जान-बूझकर मोतीलाल ने कुछ देर से झाँककर नहीं देखा

कि रेल दिखाई पड़ती है या नहीं। यात्री सामान ठीक करके बार-बार गर्दन झुकाकर गाड़ी आने की बाट जोहते हैं। ख़ोंचेवाले दही-बड़ा—पूरी - मिठाई—रोटी - सालन—पेड़ा-बर्फ़ी—सिगरेट - दिया-सलाई की आवाज़ें लगा रहे हैं कि इतने में गाड़ी ने सीटी दी। यात्रियों का दिल धड़कने लगा। किसी ने गठरी सँभाली, किसी ने कुली पर सामान लदवाया, किसी ने बच्चे को गोद में लेकर औरत को सचेत किया। बाबू मोतीलाल भी अपने लँगोटिया यार से मिलने को उत्सुक थे। ५-६ वर्ष से नहीं देखा। वह लो, गाड़ी प्लेटफ़ॉर्म पर आ गई। इंटर क्लास के डिब्बे में ख़ाकी क़मीज़ पहने, नंगे सिर गोपाल दिखाई दिए। गाड़ी खड़ी हुई। मोती-लाल गाड़ी के साथ थोड़ी दूर दौड़कर डिब्बे के पास पहुँचे। डॉक्टर गोपाल ने पहले से ही डिब्बा खोल रक्खा था। कूद पड़े, और मोतीलाल को चिपट गए। कुली ने जब डॉक्टर गोपाल से पूछा—"सामान?" तब डॉक्टर गोपाल ने मोतीलाल को छोड़ा। सामान उतरवाया। ताँगे में सामान रखकर दोनों मित्र पिछली बैठक पर बैठकर, हँस-हँसकर बातें करने लगे—

मोतीलाल—"कैसे रहे?"

गोपाल—"मुझसे न पूछकर मेरे चेहरे से पूछ लो।"

मोतीलाल—"बड़ी-बड़ी मुसीबतें आई होंगी?"

गोपाल—"आईं, और ख़ूब आईं।"

मोतीलाल—"भगवान् ने ख़ूब रक्षा की। कभी हम लोगों का भी ध्यान आया?"

गोपाल—"बहुत कम, हर समय भाग-दौड़ में रहता था।"

मोतीलाल—"मा ने बड़ा रंज मनाया, और बहुत उदास रहीं।"

गोपाल—"आज ख़ुश हैं?"

मोतीलाल—"आपको देखकर ख़ुश होंगी।"

गोपाल—"और नए समाचार बताइए।"

मोतीलाल—"मुहल्ले में एक मकान बिक रहा था, आपके लिये तय कर लिया है। साढ़े दस हज़ार में सौदा हो रहा है।"

गोपाल—"इतने रुपए मैं कैसे दे सकूँगा?"

मोतीलाल—"आपके रुपए कोई १८ हज़ार के लगभग मुझे मिले, उनको व्यापार में लगा दिया। हिसाब तो नहीं किया, पर पचास हज़ार से कम मुनाफ़ा न होगा।"

गोपाल—"तो भर्म के दूने हो गए?"

मोतीलाल—"हाँ। मकान बड़ा अच्छा है, दुमंज़िला है, दो बैठकें हैं, कुआँ, पाख़ाना सब ठीक है। मरम्मत में हज़ार-डेढ़ हज़ार लगेगा, बस, बिलकुल नया हो जायगा। सबसे बढ़िया बात यह है कि पीछे बीस गज़ लंबा, सोलह गज़ चौड़ा बाग़ है, जिसमें कुआँ, छोटा-सा मंदिर तथा १०-१२ पेड़ हैं।"

गोपाल—(हँसकर) "तो आप अब अपने घर में मुझे न रहने देंगे?"

मोतीलाल—"वह तो है ही, दिल-बहलाव को इसे भी ले लिया। आप पसंद करेंगे?"

गोपाल—"आपकी पसंद और मुझे नापसंद हो, ऐसा हो नहीं सकता।"

मोतीलाल—"लीजिए, घर आ गया, लाला बैठक में बैठे हैं।"

गोपाल ने उतरकर लाला को प्रणाम किया, और पास बैठ गए। लाला ने कुशल-प्रश्न पूछी। "सब आपकी कृपा है।" कहकर गोपाल चुप हो रहे। मोतीलाल ने अंदर जाकर कह दिया—"गोपाल आ गए।"

गोपाल की मा चटाई पर बैठी शाक काट रही थीं। उन्होंने न

तो कोई उत्सुकता प्रकट की, न द्वार की ओर आँख उठाकर देखा। मोतीलाल ने गोपाल से कहा—"भीतर चलिए।" लालाजी ने भी कहा—"हाँ-हाँ।"

गोपाल भीतर गए। खाकी क़मीज़, खाकी जीन का नेकर, नंगे सिर गोपाल घर में आए। सेठानियों को हाथ जोड़कर प्रणाम किया, दोनो भाभियों को सिर झुकाया, तत्पश्चात् मा के पैरों पर सिर रखकर पास बैठ गए। पर मा ने न तो आशीर्वाद दिया, न आँख उठाकर देखा। गोपाल ने बड़े प्यार से कहा—"मा!" पर कोई उत्तर नहीं। गोपाल ने कहा—"मा! बोलतीं क्यों नहीं?" अब भी मा ने कुछ नहीं कहा। चाक़ू से जिस प्रकार पहले शाक काटती थीं, काटती रहीं। गोपाल थोड़ी देर बैठे रहे। मा ने नीची दृष्टि से गोपाल के निम्न भाग को देखा, और झट दृष्टि हटा ली। अब गोपाल को वह दिन स्मरण आया, जिस दिन मा से बिना कहे-सुने फ़ौज में भर्ती हो गए थे। मा इसीलिये नाराज़ हैं। गोपाल ने फिर कहा—"मा! बोलतीं क्यों नहीं?" तब भी मा शाक काटती रहीं। अब गोपाल से न रहा गया, मा के हाथ से चाक़ू ले लिया, और फिर बड़े प्यार से कहा—"मा!" अब की बार मा ने आँख उठाकर गोपाल को देखा। गोपाल ने देखा, मा के हृदय में प्रसन्नता है, और ऊपर से रोष है, दोनो के बीच मा दबी जा रही हैं। गोपाल ने फिर कहा—"मा!" मा ने आँख उठाकर गोपाल पर दृष्टि डाली, तो गोपाल ने देखा—मा के चेहरे पर चार-पाँच वर्ष के वियोग में बुढ़ापे ने पहला क़दम रक्खा है, एक-दो बाल सिर के श्वेत हो गए हैं। चेहरे का वह गठाव नहीं रहा, जो दस वर्ष पहले था।

गोपाल ने कहा—"मा! बोलतीं क्यों नहीं? जो मैं जानता कि घर जाने पर मा मुझसे न बोलेंगी, तो मैं साल-दो साल और न आता।"

मा ने बड़े-बड़े नेत्रों से फिर गोपाल को देखा, उनमें दो मोती कोनों पर दिखाई दे रहे थे। कौन जाने, वे विषादाश्रु थे, या आनंदाश्रु ?

सारा घर तमाशा देख रहा था। छोटी सेठानी ने कहा—"महराजिन ! गोपाल आ गया। जब तक न आया था, रो-रोकर रात-दिन एक किए देती थीं, और जब लड़का सामने बैठा मा-मा कर रहा है, तो बोलतीं नहीं।"

गोपाल को आज पहली बार अपनी मा के लिये महराजिन का संबोधन खटका। मैं मज़दूरी करके कमाने योग्य हो गया। अब भी मेरी मा 'महराजिन' बनी रहे, तो मेरा जीवन धिक्कार है ! पर यह घर तो मेरा पालनकर्ता है, इससे असहयोग कैसा ? फिर सोचा—असहयोग कहाँ, मैं तो मा को बंधन-मुक्त करना चाहता हूँ। अब मेरी मा को कोई महराजिन न कहे। मुझे ये शब्द काट खाते हैं—'एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणोऽपि च।' अकेला चंद्र तम का नाश कर देता है, तारागण नहीं। मैं अकेला मा का उद्धार करूँगा। मा ने बड़े कष्ट उठाए हैं। जिन कष्टों से मुझे पाला है, उन्हें मैं जानता हूँ या मा। उस मा को अब कोई महराजिन न कहे। कल ही उस घर में डेरा जमाऊँगा, सारा सामान जुटाऊँगा, पर ये कर्ण-कटु शब्द अब न सुनूँगा।

गोपाल बाहर उठ आए। मोतीलाल ने कहा—"चलो, घर दिखा दें।"

घर देखकर गोपाल बहुत प्रसन्न हुए। आज ही लिखा-पढ़ी हो जायगी, और कल से मकान की मरम्मत होकर रहने योग्य हो जायगा।

[८]

दोपहर को जब सब लोग खाना खा-पी चुके, और गोपाल की मा छुट्टी पाकर बरांडे की चारपाई पर अकेली उदास बैठी थीं, तो बाहर से गोपाल ने आकर कहा—"मा !" मा ने कहा—"हाँ।" गोपाल बोला—"चलो, मकान देख आवें।"

गोपाल की मा मंत्र-मुग्ध होकर गोपाल के पीछे चल दी। मकान देखा, बहुत ख़ुश हुई। अब गोपाल ने कहा—"मा! मैं आया, तो बोलीं क्यों नहीं?"

मा ने कहा—"तू मुझसे बिना पूछे चला गया, फिर और नौकरी नहीं रही थी, फ़ौज ही रह गई थी? तू फाँसी के तख़्ते तक पहुँचा। जानता है, मैंने वे दिन कैसे काटे?"

कहते-कहते मा के आँसू छलछला आए। गोपाल ने अपने हाथों मा के आँसू पोछे, और कहा—"मा, कष्ट ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है। सोना आग में न तपाया जाय, तो उसका मूल्य कौन लगावे?"

मा ने कहा—"अब क्या करेगा?"

गोपाल ने कहा—"वह विद्या सीखी है कि जब तक मनुष्य-जाति पृथ्वी पर रहेगी, डॉक्टरी सेवा की आवश्यकता रहेगी। इसी बाहरवाली बैठक में डेरा जमाऊँगा, और डॉक्टरी करूँगा। इतना पैदा कर लाऊँगा कि तू बैठी-बैठी खा सकेगी। कुछ नहीं, तो घास खोदकर रुपया-दो रुपया कमा लाऊँगा, पर अब तू दूसरे का मुँह न ताकेगी। अब मैं तुझे 'महराजिन' न रहने दूँगा। रूखी-

सूखी जो मिले, इस घर में बैठकर खा। फिर, बाबू मोतीलाल कहते थे, पैंतालीस हज़ार रुपया मेरा उनके पास जमा है। साढ़े दस हज़ार मकान का देना होगा। हज़ार-डेढ़ हज़ार मरम्मत में लगेगा, तो भी तीस हज़ार बचेगा। फिर, मैं निठल्ला तो बैठूँगा नहीं। मकान ठीक होते ही काम चालू कर दूँगा। एक बात और है। जैसे मा, तू पराधीन रही, इसी प्रकार भारत-माता भी पराधीन है। जिस प्रकार तुझे पराधीनता से छुड़ाकर स्वतंत्रता की श्वास लेने का यत्न किया है, उसी प्रकार भारत-माता की बेड़ियाँ कटवाने को भी बद्ध-परिकर रहूँगा। तू तो समझ ले, गोपाल तेरा ही पूत नहीं है, भारत-मा का भी पूत है। मुझे उसकी सेवा करने का भी सुअवसर आने पर मत रोकना।"

१५ दिन में मकान की मरम्मत हो गई। पर मकान का क्या नाम रहे? गोपाल की मा का नाम रमा है, इसलिये गोपाल ने मा से कहा—"मा! तेरे नाम पर मकान का नाम 'रमा-निवास' रहेगा।"

मा बोली—"ऐसा ही सपूत है। इतना पढ़ा-लिखा, पर पुरखों का नाम चलाने की नहीं सूझी। मैं तो हट्टी-कट्टी जीवित हूँ, उनका नाम चला, जो तुझे चार वर्ष का छोड़कर मर गए।"

गोपाल ने कहा—"मा, ठीक कहती है।"

तब मा और पिता, दोनो के नाम पर मकान का नाम 'रमा-विलास' रक्खा गया। बाहर दो बैठकें अगल-बग़ल में हैं। बड़ी बैठक में किनारे-किनारे औषधियों का स्टॉक रहा, एक कोने पर कंपाउंडर की मेज़ और बीच में स्वयं डॉक्टर साहब की मेज़ रही। बैठक के पीछे एक कमरा था, वह रोगियों की परीक्षा के लिये रक्खा गया।

डॉक्टर गोपाल यहीं पढ़े, और बहुत दिन तक रहे, अतः

अधिकांश लोग उनसे, उनके स्वभाव से परिचित थे। फिर, कांग्रेस-कमेटी का सहयोग भी सहायक था, और इन सबसे बढ़कर आज़ाद हिंद की सेना का डॉक्टर होना था। डॉक्टर गोपाल चीर-फाड़ और आँख के विशेषज्ञ थे। फ़ौज में इन कार्यों के अनुभव के लिये पर्याप्त रोगी मिले, इसलिये हाथ और साफ़ हो गया। इधर कार्य में यह उत्तमता थी, उधर स्वभाव में मधुरता होने के कारण एक मास में ही डॉक्टर गोपाल इटावा शहर में पैर जमा सके। डॉक्टर गोपाल ने सोचा, जो रुपए मोतीलाल के पास जमा हैं, वे आड़े वक़्त पर मा के काम आएँगे। खाने-पहनने को सौ-डेढ़ सौ रुपया महीना मिल जाय, बस, काफ़ी है। इसलिये किसी से माँगना, फ़ीस ठहराना, दबाव देकर लेना उनकी नीति के सर्वथा प्रतिकूल था। बिना कुछ कहे रोगी को देखने चले गए। घर की दशा देखकर यदि उन्हें प्रतीत हुआ कि रोगी ग़रीब है, तो कुछ न लिया, देने पर इनकार कर दिया, या कह दिया—"अच्छा हो जाने पर देखा जायगा।" धनवान् रोगी को देखकर फिर उसके घरवालों की ओर पीठ करके चल दिए, मानो डॉक्टर अपना काम समाप्त कर चुका, और वह घरवालों से कुछ नहीं चाहता। कुछ लोगों ने इस सद्व्यवहार से अनुचित लाभ उठाया, और काम निकालकर चुप हो रहे। पर डॉक्टर गोपाल इस बात को ध्यान में नहीं लाए, और दुबारा आवश्यकता होने पर उसी प्रेम से सेवा की, जिस प्रेम से पहले की थी। ग़रीबों से लेने का प्रश्न ही नहीं था। केवल दवा के दाम कंपाउंडर ले लेता था। पहले महीने में फ़ीस से ८२) और दवा की बिक्री से लगभग सौ रुपए की आय हुई। कंपाउंडर अनुभव-हीन था, इसलिये उसका बहुत-सा काम भी डॉक्टर ही करते और उसे सिखाते भी थे। दूसरे महीने में इटावे के तीन मुहल्लों में हैज़ा फैला। डॉक्टर गोपाल ने वक़्त-बेवक़्त बिना किसी लोभ-लालच के रोगियों

की सेवा की। कोई १२४ रोगी इन्हें मिले, जिनमें ७ मर गए, और शेष अच्छे हो गए। इस घटना से डॉक्टर गोपाल इटावे में प्रसिद्ध हो गए। दूसरे महीने में पाँच सौ रुपए से ऊपर फ़ीस में मिले।

कानपुर के सेठ का एकलौता लड़का रोगी हुआ, आँतों में रोग था। किसी डॉक्टर ने कह दिया कि ऑपरेशन होगा, और रोगी की जान ख़तरे में होगी। एक तो सेठ, दूसरे एकलौता लड़का, फिर किस प्रकार ऑपरेशन को तैयार होता? वैद्य, हकीम और डॉक्टर जब दवा करके उसे अच्छा न कर सके, तब झाड़ा-फूँकी और भूत-प्रेत की पूजा होने लगी; पर लाभ के स्थान पर रोगी की दशा बिगड़ती ही गई। सेठ ने कह दिया—"जो कोई हमारे लड़के को अच्छा कर देगा, हम दस हज़ार रुपया पुरस्कार देंगे।"

किसी ने सेठ से डॉक्टर गोपाल का नाम बताया। सेठ ने आदमी भेजा। डॉक्टर गोपाल ने कानपुर जाकर बच्चे को देखा। १८-१९ वर्ष की उम्र थी, कभी बुख़ार हल्का, कभी ज़ोर का, कभी सूजन, कभी क़ै, कभी दस्त, अजब तरह का रोगी था। डॉक्टर गोपाल ने सेठ से कहा—"बच्चा छू-मंतर करते तो आराम न होगा, पुराना रोगी है, अतएव बहुत सावधानी से दवा करनी होगी, साथ ही परहेज़ भी काफ़ी रखना होगा। यदि आप महीने-दो महीने इटावे में हमारे पास लड़के को रख सकें, तो हम दवा करें, नहीं तो हम दवा न करेंगे।"

सेठानी वहाँ ले जाने को राज़ी न थी। पर जब सेठ ने कहा—"बच्चा हाथ से जा रहा है, यह भी करके देख लो", तब एक नौकर, सेठानी और रोगी को इटावा भेजना निश्चय हुआ। डॉक्टर गोपाल के मकान के पास ही एक मकान किराए पर लेकर सेठानी रहने लगीं। डॉक्टर गोपाल ने दवा प्रारंभ की। पहले हफ़्ते कोई प्रभाव

न हुआ, तब दूसरी दवा बदलकर दी। ४-५ दिन उसे भी देखा, पर कोई लाभ नहीं। विवश होकर तीसरे हफ़्ते में दवा बदलकर रोगी के परहेज़ पर कड़ी नज़र रक्खी। सेठानी कभी मिठाई, कभी फल, कभी अंट-संट चीज़ें बच्चे को खिला देती थीं, इससे और भी गड़बड़ हो जाती थी। डॉक्टर गोपाल ने सेठानी से कह दिया—"या तो परहेज़ के साथ दवा करो, या बच्चे को ले जाओ।" अब सेठानी ने बच्चे को परहेज़ से रखने का वादा किया। नौकर से ताकीद कर दी गई कि बिना डॉक्टर गोपाल से पूछे कोई वस्तु बाज़ार से न लावे।

डॉक्टर गोपाल ने एक दिन रात्रि को सोचा कि यदि यह रोगी अच्छा हो जाय, तो पैसे के साथ यश भी मिलेगा, इसलिये इस पर ख़ूब ध्यान देना चाहिए। दूसरे दिन उन्होंने एनिमा से रोगी का पेट साफ़ किया, और दवा दी। तीसरे दिन भी ऐसा ही किया। चौथे दिन एनिमा देने के बाद रोगी के पेट से उँगली के बराबर मोटा, एक हाथ लंबा एक केंचुआ निकला, जो थोड़ी देर जीवित रहकर मर गया। आज बच्चे की आँतों में कुछ दर्द ज़रूर है, पर और सब बातों में आराम है। डॉक्टर गोपाल ने एनिमा और दवा जारी रक्खी, पर आँतों से और कुछ न निकला। इधर रोगी की दशा उत्तरोत्तर अच्छी होने लगी। १५ दिन में रोगी चलने-फिरने लगा। सेठानी ने सेठ को बुलाया। लड़का दिनोंदिन आरोग्य लाभ कर रहा था। डॉक्टर गोपाल ने एक हफ़्ते रहने के बाद कानपुर ले जाने की आज्ञा दे दी। अब लड़का बाज़ार तक घूम आने लगा। दोपहर को रोटी-दाल और शाम को दूध पीने लगा।

सेठानी डॉक्टर गोपाल के घर गईं, और अपने हाथ के कंगन उतारकर गोपाल की मा को भेंट देने लगीं। गोपाल की मा ने लेने से सर्वथा इनकार किया, समझाया, पर सेठानी ने एक न

सुनी, और कंगन रखकर चली गईं। उधर ताँगा तैयार था। स्टेशन जाकर सेठानी कानपुर को रवाना हो गईं। डॉक्टर गोपाल किसी रोगी को देखने गए थे। उनकी मा ने उनको बुलवाया, पर वह तो थे ही नहीं, अब क्या हो? रोगी को देखकर लौटने पर डॉक्टर गोपाल की मा ने सारा क़िस्सा सुनाया। गोपाल ने कहा—"कंगन तुम्हें लेने नहीं थे। ख़ैर, देखा जायगा।"

कानपुर जाकर सेठानी ने कथा कहलाई, और भोज किया। डॉक्टर गोपाल बुलाए गए। वह कंगन लेते गए थे। जब कानपुर से लौटने को हुए, तब उन्होंने कंगन सेठानी को देकर कहा—"यह बात ठीक नहीं है।" पर सेठानी ने एक न सुनी, और कहा—"मैं दे चुकी। फिर, ब्राह्मण को दी हुई वस्तु लौटाना मेरे लिये महापाप है।"

सेठ ने दस हज़ार रुपया डॉक्टर गोपाल के सामने रक्खा। डॉक्टर गोपाल ने कहा—"देखिए, आप मुझे रुपया दे देंगे, कोई न जानेगा कि क्या हुआ। आप इस रुपए से मेरे बाग़ में रोगियों के रहने का स्थान बनवा दें।"

सेठ राज़ी हो गया, और डॉक्टर गोपाल के प्रयत्न से कुछ सामान प्राप्त हुआ, कुछ लोहा आदि सामान कानपुर से भेजा गया, और दस रोगियों के रहने योग्य स्थान, रसोई-घर और शौचालय बन गया। अब डॉक्टर गोपाल के यहाँ रोगियों के रहने की सुविधा हो गई। दूर-दूर के रोगी भी आने लगे।

इटावा-स्टेशन पर पं० करुणाशंकर बुकिंग-क्लर्क थे। उनकी बहन के पैर में फोड़ा निकला। बहन का नाम जागेश्वरीदेवी था। जागेश्वरी मेडिकल कॉलेज, आगरा में पढ़ती है। इस वर्ष उसकी शिक्षा ३-४ मास पश्चात् समाप्त हो जायगी, अतः स्वयं डॉक्टरनी है। उसने अपना फोड़ा बैठाने के लिये अपनी डॉक्टरी

का पूरा उपयोग किया, दवाइयाँ लगाईं, सेंक किया, पर फोड़ा न बैठा, और उसमें मवाद पड़ गया। अब बुख़ार भी हो आया। स्वयं बीमार होने पर वैद्य, हकीम या डॉक्टर, सभी अपना इलाज करना भूल जाते हैं। जागेश्वरी को बुख़ार आते ही फोड़े की दवा करना भूल गया। भाई से कहा—"छोटे दद्दा! किसी डॉक्टर को फ़ौरन् दिखाइए।"

करुणाशंकर डॉक्टर गोपाल से परिचित थे। साथ ही डॉक्टर गोपाल की शहर में प्रसिद्धि थी। अतः उन्हीं के पास गए। डॉक्टर गोपाल तुरंत आए, फोड़ा देखा, और कहा—"ऑपरेशन होगा।"

करुणाशंकर ने कहा—"वहीं ले चलना होगा या यहीं ऑपरेशन हो जायगा?"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"ऑपरेशन तो यहाँ भी हो जायगा, पर सब बात का सुभीता मेरे ही यहाँ रहेगा।"

डॉक्टर गोपाल तो चले गए। करुणाशंकर जागेश्वरी और अपनी मा को लेकर उनके यहाँ पहुँचे। उन्होंने एक कोठरी दे दी, और बड़े अच्छे तरीक़े से ऑपरेशन कर दिया। दूसरे दिन, ड्रेसिंग करते समय, जागेश्वरी ने देखा, घाव बहुत लंबा है। डॉक्टर से पूछा—"डॉक्टर साहब! कितने दिन लगेंगे?"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"८-१० दिन में ठीक हो जायगा।"

जागेश्वरी को चौथे दिन से आराम मिला, दर्द कम हुआ, ड्रेसिंग में भी कम कष्ट प्रतीत हुआ। खाने-पीने और उठने-बैठने भी लगी, पर चलने को डॉक्टर गोपाल ने बिलकुल मना कर दिया। जागेश्वरी की मा हर समय पास रहती थी। यहीं भोजन बनता था। भोजन बनाते समय किसी वस्तु की आवश्यकता हुई, नौकर पास था नहीं, मा बाज़ार जा नहीं सकती। पड़ोसी रोगी के साथी से वह वस्तु लाने को कहा। उसने कहा—"डॉक्टर साहब के घर

से ले आओ। मैं कई बार ले आया। उनकी मा बड़ी सीधी हैं।"

जागेश्वरी की मा गई, और डॉक्टर गोपाल की मा ने आदर से लिया। आने का कारण पूछा, जिस वस्तु की आवश्यकता थी, तुरंत दे दी। जागेश्वरी का हाल पूछा। जागेश्वरी की मा ने आकर जागेश्वरी से डाक्टर गोपाल की मा की बड़ी प्रशंसा की। जागेश्वरी ने कहा—"अच्छी हो जाऊँ, तब दर्शन करूँगी।"

जागेश्वरी दिनोंदिन स्वास्थ्य लाभ करने लगी। जब थोड़ा चलने-फिरने योग्य हुई, तो मा के साथ डॉक्टर गोपाल के घर गई। उनकी मा ने बड़े प्यार से बिठाया। जागेश्वरी से फोड़े की दशा और मा से घर की कुशल-क्षेम पूछी। उसके बाद तश्तरी में मिठाई और जल लाकर दोनो के सामने रख दिया। जागेश्वरी की मा ने कहा—"बहन, मैंने डॉक्टर साहब को कष्ट दिया, मुझे आपकी सेवा करनी चाहिए, न कि आप उल्टा मेरे ऊपर बोझ डाल रही हैं।"

गोपाल की मा ने कहा—"तुम्हारे ही सबके घर से यह सामान आया है। किसी ने भिजवा दिया। अब आपके सामने आप ही की वस्तु रख रही हूँ, इसमें मेरा क्या है? खाइए।"

बड़े संकोच से दोनो ने जलपान किया, फिर खुलकर बातें हुईं। एक ने दूसरे का परिचय लिया। घर का पता, कौन ब्राह्मण हैं? कैसे हैं? और तो और, छोटी-छोटी बातों का भी आदान-प्रदान हुआ। अब जागेश्वरी तो रोज़ डॉक्टर गोपाल के घर आने लगी, और माजी के पास बैठकर मिठाई खाती, बातें करती और चली जाती। एक दिन डॉक्टर गोपाल आ गए, बोले—"जागेश्वरी! जितना ही आराम करोगी, उतना ही जल्द घाव अच्छा होगा। फिर, आप सब कुछ जानती हैं। मेरा कहना व्यर्थ है।"

माजी उठीं, तकिया ले आईं, और क़ालीन पर जागेश्वरी को

लिटा दिया, जैसे अपनी ही लड़की हो, और प्यार से थपथपाकर बातें करने लगीं।

एक दिन जागेश्वरी और डॉक्टर गोपाल की मा आपस में बातें कर रही थीं, और जागेश्वरी डॉक्टर गोपाल के कमरे में बैठकर उनकी प्रैक्टिस देख रही थी। बातें यों हो रही थीं—

जागेश्वरी की मा—"जगतपुर में कोई श्यामलालजी रहते हैं?"

गोपाल की मा—"क्यों?"

जागेश्वरी की मा—"उनको हमारे कुटुंब की एक लड़की ब्याही थी।"

गोपाल की मा—"हाँ, वह मेरे देवर होते हैं।"

जागेश्वरी की मा—"तब तो हमारा-आपका संबंध भी निकल आया।"

गोपाल की मा—"ढूँढ़ने से सब संबंध निकल आते हैं।"

जागेश्वरी की मा—"बहू को कब तक बुलाओगी?"

गोपाल की मा—"किसकी बहू?"

जागेश्वरी की मा—"डॉक्टर साहब की।"

गोपाल की मा—"अभी गोपाल का ब्याह कहाँ हुआ है। कुँआरा है।"

जागेश्वरी की मा—"क्यों?"

गोपाल की मा—"पहले पढ़ता रहा, फिर लड़ाई पर चला गया, वहाँ क़ैद हो गया। अभी ५-७ महीने तो आए ही हुए हैं।"

जागेश्वरी की मा—"तो ब्याह कर डालो।"

गोपाल की मा—"कोई ढंग का ब्याह आ जाय।"

जागेश्वरी की मा—"तब बहुत-सा रुपया माँगोगी?"

गोपाल की मा—"मुझे सुशील बहू चाहिए, रुपया नहीं। आप देखती हैं, गोपाल किसी से माँगता नहीं, ग़रीबों से तो कुछ भी

नहीं लेता, फिर भी भगवान् की कृपा से बहुत कुछ मिल जाता है।"

जागेश्वरी की मा—"हाँ, हमारे करुणा उस दिन दस रुपए का नोट देते रहे, पर डॉक्टर साहब ने नहीं लिया, और उलटे करुणा को डाँट बताई।"

गोपाल की मा—"आपस की बात है, इसमें लेना-देना कैसा?"

जागेश्वरी की मा चली गईं। पर आज हृदय में एक खटक लेकर आईं। करुणाशंकर के आने पर उन्होंने एकांत में कहा—"डॉक्टर गोपाल अपने संबंधी हैं, और अभी तक कुमार हैं! जागेश्वरी के लिये इससे अच्छा वर दीपक लेकर ढूँढ़ोगे, और न पाओगे।"

करुणाशंकर ने कहा—"आप जानें और चाचाजी जानें, भाई साहब जानें, मैं तो सबसे छोटा हूँ, पर इतना कह सकता हूँ कि डॉक्टर गोपाल का स्वभाव देवताओं-जैसा है। काम, क्रोध, लोभ और मोह उन्हें छू नहीं गया। मैंने रुपए दिए, तो नहीं लिए, उलटे प्रेम-भरी फटकार और सुना दी। मैं तो खूब पसंद करता हूँ। दोनों डॉक्टर बनकर रहेंगे, सब तरह का सुख और सुविधा है।"

करुणाशंकर का घर शिकोहाबाद के पास, एक मील की दूरी पर, एक गाँव में है। बड़े भाई दयाशंकर आगरे में वकालत करते हैं। उन्हीं के पास, उन्हीं की देख-रेख में जागेश्वरी मेडिकल कॉलेज में पढ़ती है। बड़े दिन की छुट्टी में छोटे भाई के पास आई थी कि फोड़ा निकल आया। पिता घर पर रहते और खेती की देख-भाल करते हैं। भाई को आगरा और पिताजी को घर पर चिट्ठी भेजकर सारा विवरण लिख दिया गया। इधर जागेश्वरी स्वस्थ होकर जब घर जाने लगी, तो चलते समय डॉक्टर गोपाल की मा ने कहा—

"दूसरे-तीसरे हो जाना, जी बहल जायगा। और, बेटी जागेश्वरी! तुम तो ज़रूर ही आना।"

जागेश्वरी बोली—"माजी, मैं ज़रूर आऊँगी। भला, ऐसी अच्छी मिठाई कौन छोड़ देगा?"

डॉक्टर गोपाल की मा ने कहा—"आना, ख़ूब मिठाई खिलाऊँगी।"

[९]

शुक्रवार को ज़िद करके जागेश्वरी मा को डॉक्टर गोपाल के घर ले गई। उनकी मा ने जागेश्वरी को ख़ूब मिठाई खिलाई। मिठाई खाकर जागेश्वरी डॉक्टर गोपाल के पास कमरे में पहुँची। वह रोगियों को देखने में व्यस्त थे, नमस्ते होकर रह गई। जागेश्वरी डॉक्टर गोपाल का रोगियों के देखने का ढंग ध्यान से देख रही थी। उनकी ओषधि पहले स्वयं मन में निर्धारित करती, फिर देखती कि डॉक्टर गोपाल क्या लिखते हैं। यदि दोनो का मेल खाता, तो जागेश्वरी बहुत ख़ुश होती, यदि मेल न खाता, तो जागेश्वरी डॉक्टर गोपाल से इस भेद का कारण पूछती। वह बड़े सुंदर ढंग से उसका समाधान कर देते। उन्होंने एक रोगी जागेश्वरी के सामने करके उसकी ओषधि निश्चित करने को कहा। जागेश्वरी ने कई प्रश्न करके ओषधि निश्चित की। उसका मन रखने को डॉक्टर गोपाल ने कह दिया—"हाँ, ठीक है, किंतु यदि इसके बदले अमुक दवा हो, तो अधिक अच्छा हो।"

अब जागेश्वरी के घाव के संबंध में डॉक्टर गोपाल ने पूछा। उत्तर मिला—"ठीक हो रहा है। रोज़ सबेरे और शाम मैं ही ड्रेसिंग कर लेती हूँ। मवाद नहीं आता। तीन-चार दिन में पट्टी खुल जायगी। मेरी इच्छा है, मैं जब मार्च में परीक्षा देकर आऊँ, तो आपके साथ रहकर कुछ दिन काम करूँ।"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"आपका घर है, आपका अस्पताल है, शौक़ से आइए। मुझे तो और सुविधा होगी, बल्कि मैं तो बराबर—

वाली बैठक में आपके बैठने का प्रबंध करके स्त्रियों की देख-भाल आप पर छोड़ दूँगा।"

एक रोगी आ गया, और डॉक्टर गोपाल उससे बातें करने लगे।

इधर गोपाल और जागेश्वरी की मा बातें करने लगीं। थोड़ी देर इधर-उधर की बातचीत के बाद जागेश्वरी की मा मतलब की बात पर आ गईं, और कहा—"बहनजी! फिर डॉक्टर साहब के ब्याह के लिये क्या बात तय की?"

गोपाल की मा—"ब्याह तो करना ही है। आज करूँ या कल।"

जागेश्वरी की मा—"फिर रुपया तो बहुत-सा न माँगोगी?"

गोपाल की मा—"अगर घर और लड़की ठीक होगी, तो फिर रुपए का प्रश्न क्या? बताइए, कैसा घर और कैसी लड़की है?"

जागेश्वरी की मा—"लड़की हमारी जागेश्वरी-जैसी समझ लो।"

गोपाल की मा—"जागेश्वरी-जैसी का क्या अर्थ?"

जागेश्वरी की मा—"रूप और गुण में, उम्र में ऐसी ही है।"

गोपाल की मा—"इतना ही पढ़ी-लिखी भी है?"

जागेश्वरी की मा—"हाँ, इतना ही पढ़ी-लिखी। हमारे ही कुटुंब की है।"

गोपाल की मा—"घर पर क्या होता है?"

जागेश्वरी की मा—"खेती, नौकरी और वकालत।"

गोपाल की मा—"तब ठीक है।"

जागेश्वरी की मा—"फिर कितने रुपए में राज़ी हो जाओगी?"

गोपाल की मा—"जितना वे लोग ख़ुशी से दे देंगे, हम कुछ न माँगेंगी।"

जागेश्वरी की मा—"तो ब्याहवालों को भेजूँ?"

गोपाल की मा—"आपकी मर्ज़ी।"

जागेश्वरी की मा—"फिर रुपएवाली बात से हट न जाना।"

गोपाल की मा—"बहन, रुपए का क्या प्रश्न? गोपाल रोटी-भर को ख़ूब कमा लेता है।"

जागेश्वरी की मा—"तो बात पक्की रही? और किसी से तो नहीं पूछना है?"

गोपाल की मा—"बात पक्की रही। और किससे पूछना है। मेरा लड़का, मैं मालिक हूँ।"

जागेश्वरी की मा ने पाँच रुपए निकालकर भेंट किए। गोपाल की मा ने कहा—"यह क्या बात?"

जागेश्वरी की मा ने कहा—"यह पहली भेंट है। जागेश्वरी का बड़ा भाई वकील है, वह और इसके पिता कल शनिवार की शाम की गाड़ी से आ जायँगे, और ब्याह पक्का हो जायगा।"

गोपाल की मा ने कहा—"तो जागेश्वरी का ही ब्याह करना है?"

जागेश्वरी की मा ने कहा—"हाँ, हम लोग जो दे सकेंगे, वह देंगे, पर आपके घर के योग्य कदाचित् न दे सकें। बहनजी! जागेश्वरी को मैंने बड़े लाड़-प्यार से पाला है। यही एक लड़की दोनों भाइयों के बीच है, इसलिये हम लोग जी खोलकर ब्याह करेंगे। पर अभी तो केवल विनय-मात्र है।"

गोपाल की मा को यह विश्वास न था कि इतनी शीघ्रता से ब्याह तय होकर भेंट सामने आएगी। वह जागेश्वरी से परम प्रसन्न थीं। यह भी जानती थीं कि गोपाल भी पसंद करेगा, पर फिर भी उन्होंने कहा—"पहले गोपाल से पूछ लूँ, तब भेंट लूँगी।"

जागेश्वरी की मा ने कहा—"पहले आपने ब्याह पक्का होने का वचन दिया है, तब मैं आगे बढ़ी हूँ। मैंने कहा था कि किसी से पूछना तो नहीं है, तब आपने कहा—मेरा लड़का है, पूछना

किससे है। इसलिये अब आप ये रुपए लेने से इनकार नहीं कर सकतीं।"

बात उचित थी। गोपाल की मा निरुत्तर हो गईं, पर फिर भी रुपए उन्होंने नहीं लिए, और कहा—"देखिए, लड़का सयाना है, बिना उससे पूछे इतना आगे बढ़ना ठीक नहीं। मैं आज पूछ लूँगी।"

जागेश्वरी की मा ने कहा—"तो मुझे कल फिर आना चाहिए?"

गोपाल की मा ने कहा—"आपका घर है, कष्ट ज़रूर होगा, पर मैं कृतज्ञ होऊँगी।"

इतने में जागेश्वरी आ गई, और कहा—"मा, चलिए।"

गोपाल की मा ने कहा—"थोड़ी मिठाई और खा लो।"

जागेश्वरी बोली—"अब की बार आकर खाऊँगी।"

जागेश्वरी की मा ने कहा—"तू इतनी बार मिठाई खा गई, और आगे के लिये अभी से ठहराती है। कभी यह न बन पड़ा कि माजी और डॉक्टर साहब के लिये भी मिठाई लाती।"

जागेश्वरी बोली—"डॉक्टर साहब और हम तो एक ही संप्रदाय के आदमी हैं। हाँ, माजी के लिये अब की बार मिठाई लाऊँगी।"

नमस्ते करके दोनो चल दीं।

स्टेशन पर आकर करुणाशंकर से उसकी मा ने सारी बात बताई, अभी तक इस घर में ये ही दो व्यक्ति इस रहस्य से परिचित हैं। दूसरे दिन करुणाशंकर ने दस रुपए की मिठाई और दस रुपए के फल लाकर मा को दिए कि जाकर डॉक्टर साहब के घर दे दें।

शाम को जब डॉक्टर खाना खा चुके, तो मा ने कहा—"कल मुझे मेरे घर चलकर पहुँचा दे।"

डॉक्टर—(विस्मय से) "क्यों? क्या बात है?"

मा—"घर जाऊँगी, बहुत दिन हो गए।"

डॉक्टर—"बाईस वर्ष जिस घर को छोड़े हुए, वहाँ तुझे कौन पहचानेगा ? फिर, किसके घर जायगी ?"

मा—"अपने घर जाऊँगी।"

डॉक्टर—"बात भी बताएगी ?"

मा—"मुझे अकेले अच्छा नहीं लगता।"

डॉक्टर—"तो एक नौकरानी रख ले।"

मा—"तू मुझसे बातें न बना। मुझे जगतपुर पहुँचा दे।"

डॉक्टर—"मेरी मा ! कोई नई बात हुई है ?"

मा—"हाँ, हुई है।"

डॉक्टर—"वह क्या ?"

मा—"कि मैं २२ वर्ष बाद अपने घर जा रही हूँ।"

डॉक्टर—"और मैं किसके हाथ की बनी रोटी खाऊँगा ?"

मा—"इतने दिन फ़ौज में मेरे बिना पूछे रहा, तब किसके हाथ की बनी रोटी खाई थी ?"

डॉक्टर—"मा, आज तुझे क्या हो गया है ?"

मा—"पागल हो गई हूँ।"

डॉक्टर—"मा ! मैं डॉक्टर हूँ, तेरे पागलपन की दवा करूँगा, तू यहीं रह।"

मा—"मैं नहीं रहूँगी, कोई ज़बरदस्ती है ?"

डॉक्टर—"मा ! तुझसे ज़बरदस्ती न करूँगा, तो किससे करूँगा ?"

मा—"तू ये चापलूसी की बातें रहने दे। मुझे अकेले अच्छा नहीं लगता।"

डॉक्टर—"तो कल बाज़ार से एक औरत मोल ले आऊँगा, बस ?"

मा—"देख, मैंने कहा था, धन चाहिए और बहू। धन तो मिल गया, अब बहू लूँगी, और जल्द लूँगी।"

डॉक्टर—"अच्छा, 'यह मुँह और धुली हुई दाल!' क्या स्वप्न देखा है? न जान, न पहचान, ब्याह ऐसे होता है? बहू लूँगी, और जल्द लूँगी। देखूँगा।"

मा—"देखेगा क्या? इसी मुँह को धुली हुई दाल मिलेगी, और कल ही मिलेगी।"

डॉक्टर—"बात क्या है, वह तो बतलाएगी नहीं; यह तमाम दुनिया का जटल-क़ाफ़िया सुनाएगी।"

मा—"या तो कल मुझे घर पहुँचा दे, नहीं कल ब्याह रोकूँगी।"

डॉक्टर—"पहेली बुझाती है, पर बात नहीं बतलाती।"

मा ने सारा वृत्तांत बतला दिया। अब गोपाल चुप। 'न सत्य कहा, न कृष्ण।' तब मा ने कहा—"अब बता, सब बात ठीक है?"

गोपाल ने कोई जवाब नहीं दिया। मा ने कहा—"बोलता क्यों नहीं?"

गोपाल फिर भी चुप। अब मा ने कहा—"जब फ़ौज से लौटा था, तब मैं नहीं बोली थी, क्या उसी का बदला ले रहा है?"

अब गोपाल अपनी हँसी न रोक सके। 'मैं क्या जानूँ' कहकर फिर चुप हो रहे।

मा ने कहा—"देखो, लड़की अच्छी, पुराने संबंधी, घर पढ़ा-लिखा, इस पर भी बेचारे अपनी शक्ति-भर रुपया देने को कहते हैं। अब और क्या चाहता है?"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"मा! मैं इन बातों को क्या जानूँ? जो तू ठीक समझे, वह कर।"

मा ने कहा—"मैंने तो बिलकुल ठीक समझा। २१ वर्ष को

लड़की है। इस साल होली बाद डॉक्टर बन जायगी। तेरे साथ डॉक्टरी करेगी, घर सँभालेगी, और मैं बहुत प्रसन्न होऊँगी।"

गोपाल ने कहा—"तब तेरी सेवा कौन करेगा?"

मा ने कहा—"बहू और बेटा, दोनो।"

गोपाल ने कहा—"दोनो को तो डॉक्टर बना रही है, सेवा कौन करेगा?"

मा ने कहा—"क्या डॉक्टर बनकर सेवा नहीं होती? फिर मेरी सेवा क्या? सारी ज़िंदगी दूसरों के इतने बड़े घर को रोटी बनाकर खिलाई, क्या अब मैं अपने तीन प्राणियों के लिये रोटी न बना सकूँगी?"

गोपाल ने कहा—"तब बहू का क्या सुख?"

मा ने कहा—"वह सब कुछ कर लेती है। फिर, तेरा मन हो, तो डॉक्टरी कराना, नहीं, तो नहीं। अच्छा, कल वे लोग आएँगे। पहले जागेश्वरी की मा तेरी राय जानने को आएँगी, फिर उसके भाई और पिता शाम को तुम्हारे पास आएँगे। बस, सुआमिला तय।"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"मा! जिन्होंने बीस वर्ष रोटी-कपड़ा दिया, पढ़ाया, पालन किया, क्या उनसे नहीं पूछना चाहिए?"

मा ने कहा—"कहने-भर को ही पूछना चाहिए। बीस वर्ष मुफ़्त में रोटी-कपड़ा दिया है? काम करते-करते आधे हाथ घिस गए हैं। अकेली रतना के ब्याह का बदला ही वे नहीं चुका सकते। फिर, आज तक मैंने कभी दो पैसे नहीं माँगे, न उन्होंने दिए। थोड़ा-सा रुपया पढ़ाने को दे दिया, तो क्या किया? चाहें, तो उतना रुपया हमारे रुपए में से काट लें। पर ब्याह के बारे में वह क्या जानें? गोपाल की मा मैं हूँ, गोपाल का बाप मैं हूँ, मेरा हाथ पकड़नेवाला कौन है? इसी दिन के लिये अनगिनत कष्ट सहे।

तू क्या जाने कि मैंने इस जीवन की कितनी रातें भीगी पलकों से काटी हैं ? आज वह दिन याद आता है, जब तेरे पिता मरे थे। धरती हिल उठी थी, आकाश फट पड़ा था, घोर अंधकार था। चार वर्ष का तू मांस का एक लोंदा था, बग़ल में दाबकर इटावा लाई। बाज़ार में मर्द बनकर मज़दूरी पर बैठ गई। उन अशरण-शरण ने परीक्षा लेकर पास किया, और महराजिन बनकर सेठ के घर में जा बैठी। नौकरानी बनकर गई, पर अपने व्यवहार से मालकिन बनकर रही। किसी ने नहीं कह पाया—'गोपाल की मा ! तुम्हारे मुँह में कितने दाँत हैं ?' महीने-दो महीने नौकर नहीं टिकता, साल-भर टिक जाय, तो मानो बड़ी बात हुई। यहाँ २२ वर्ष—आधा जीवन इस सँकरी घाटी में बिता दिया। आज उन पतित-पावन ने हमें यह अवसर दिया है कि हम उन्हें स्मरण करें, सारा श्रेय उन्हें दें, और उन्हीं के नाम पर इस शुभ कार्य का श्रीगणेश कल करें।"

गोपाल मा का मुँह ताकते रह गए। थोड़ी देर बाद धीरे से कहा—"मा ! मैं २७ वर्ष का हो गया हूँ, आज तक तेरी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया, तो अब क्या करूँगा ? अभी तक तूने कष्ट उठाकर मुझे पाला-पोसा, अब मेरी बारी है कि इन चरणों (चरण पकड़कर) की सेवा करूँ। घर में जो कुछ है, तेरा है। मैं तेरा हूँ। और, विश्वास रख, आज़ाद हिंद का सैनिक तेरा बेटा गोपाल इस जीवन में क्या, सात जीवन में भी तेरी सेवा करके तुझसे उद्धार न होगा। पर मेरी प्यारी मा ! इतना ध्यान रखना कि समय आने पर गोपाल पराधीना भारत-माता की सेवा करने से पीछे न हटेगा। और, अगर समय आया, तो तेरी बहू को भी उसकी सेवा के लिये धसीट ले जायगा। मैं कोंरा रहकर तेरी और भारत-माता की सेवा बहुत अच्छे प्रकार कर सकता हूँ। पर तेरे पिछले दुःखों का स्मरण

कर ब्याह से इनकार करने को मन नहीं होता। तेरा मन दुखी होगा, तेरी आज्ञा का उल्लंघन होगा, नहीं तो अभी कह दूँ कि ब्याह करने की अपेक्षा मैं अकेला रहकर तेरी तथा भारत-माता की सेवा भली भाँति कर सकता हूँ। पर—

इस भाँति यद्यपि ब्याह करने को नहीं तैयार हूँ;
पर धर्म-बंधन में बँधा हूँ, क्या करूँ, लाचार हूँ।"

मा ने कहा—"बस, रहने दे अपना व्याख्यान। आज जागेश्वरी की मा आएगी, और मैं उनसे हाँ कर दूँगी।"

गोपाल नीचा सिर किए कुछ सोचने लगे। मा ने कहा—"क्या सोचता है?"

गोपाल बोले—"क्या बताऊँ? यही सोचता हूँ कि मा मेरे पैरों में बेड़ियाँ डाल रही हैं।"

मा ने कहा—"मैं तेरे पैरों में नहीं, अपने पैरों में बेड़ियाँ डाल रही हूँ। तू खुशी से कांग्रेस का काम कर, भारत-माता की सेवा कर। स्वर्ग से तेरे पिता झाँककर देखेंगे कि हमारा सपूत भारत के काम आया, और इस पराधीना भारत-भूमि पर बैठी मैं देखूँगी कि सपूत गोपाल ने मेरी कोख में जन्म लेकर मेरे मातृत्व को उज्ज्वल किया। मैं तुझे कभी न रोकूँगी। पर तू यह ब्याह मेरे कहने से कर। मंगल-मय भगवान् कल्याण करेंगे, और मैं आशीर्वाद देती हूँ कि तू सदा सुखी रहेगा।"

गोपाल गद्गद हो गए। मा के चरण छुए, और कहा—"मा, तू जो चाहे कर। यह शरीर तेरा है, अतः तू इसका उपयोग कर सकती है।"

---

[१०]

तीसरे पहर जागेश्वरी की मा आई। वह नहीं चाहती थी कि जागेश्वरी उसके साथ चले, पर गोपाल की मा का प्रेम, डॉक्टर साहब के रोगियों को देखने और दवा देने का ढंग उसे सीखना था। डॉक्टरी कैसे सफल होती है, यह भी देखना था। अतः जागेश्वरी साथ आई। द्वार पर आते ही बग़लवाले कमरे में डॉक्टर साहब को नमस्ते करके भीतर चली गई। मिठाई और फल देखकर गोपाल की मा ने कहा—"इनकी क्या आवश्यकता थी? नित्य कोई-न-कोई ऐसा आ जाता है कि ये वस्तुएँ दे जाता है, फिर आपने पैसा ख़र्च करके व्यर्थ कष्ट उठाया।"

जागेश्वरी की मा ने कहा—"जैसे और लोग लाते हैं, उन्हीं में एक हम भी सही।"

जागेश्वरी मिठाई खाकर डॉक्टर साहब के पास चली गई। दो-एक रोगी आए, डॉक्टर ने उनको जागेश्वरी से दवा लिखवाई। जब छुट्टी मिली, तो जागेश्वरी ने कहा—"मैं एप्रिल में परीक्षा देकर आ जाऊँगी, तब आपके साथ काम करूँगी।"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"अभी ऐसा विचार है, तब तक न-जाने क्या विचार हो?"

जागेश्वरी ने कहा—"नहीं-नहीं, पक्का विचार है, सोलह आने पक्का है।"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"मुझे विश्वास नहीं, एक काग़ज़ पर लिख दीजिए।"

इतना कहकर काग़ज़ आगे कर दिया। जागेश्वरी ने जो मुँह से कहा था, वही लिख दिया। डॉक्टर गोपाल ने कहा—"यह तो लिखा ही नहीं कि यह बात ख़ूब सोच-विचारकर लिखी है।"

जागेश्वरी ने पुनश्च करके वह भी लिख दिया। डॉक्टर गोपाल ने काग़ज़ रख लिया।

अब उन्होंने वह बात की, जो जीवन में कभी न की थी। आज तक उन्होंने किसी स्त्री को आँखें गड़ाकर नहीं देखा था। वह तो सारा संसार मातामय समझते थे, पर आज उन्होंने जागेश्वरी को दृष्टि गड़ाकर ख़ूब देखा। शृंगार-रस से सर्वथा अनभिज्ञ होने पर भी वयस पाकर स्त्री या पुरुष के मन में स्वतः काम उत्पन्न हो जाता है। यदि उसे उत्तेजन दिया जाय, तो गाड़ी किसी गर्त में जा गिरती है। यदि उसे अपने भरोसे छोड़ दिया जाय, तो कष्ट नहीं देता। और, यदि उस पर क़ाबू रक्खा जाय, तो अनंत बल, असीम साहस, अखंड शांति और अपरिमित आनंद देता है।

डॉक्टर गोपाल ने जागेश्वरी को ख़ूब ध्यान से, दृष्टि गड़ाकर देखा। काम-कला की साक्षात् मूर्ति थी। रंग बिलकुल डॉक्टर गोपाल-जैसा। पर उन्होंने संसार के उतार-चढ़ाव इसी २७ वर्ष की उम्र में बहुत-से देखे हैं, इसलिये चेहरे पर कभी-कभी विकट गांभीर्य का भाव प्रस्फुटित होता है। और जागेश्वरी ? कवि-कुल-गुरु कालिदास के 'शकुंतला'-नाटक में वर्णित, श्रद्धेय राजा लक्ष्मणसिंहजी के शब्दों में—

वह तौ निरदोखिल रूप तिया, अन सूँघो मनौ कोई फूल नयो ;
नव पल्लव कै नखहू न लग्यो, कोई रत्न किधौं, जो बिंध्यो न गयो।
फल पुन्नन को है अखंड, किधौं मधु है सदकै बिन स्वाद लयो;
बिधना-मत मोहि न जानि परै, तेहि चाहत कौनके भाग दयो ?

सचमुच जागेश्वरी शकंतला की प्रतिमूर्ति थी। सारा शरीर साँचे में

ढला था। शकुंतला राजा दुष्यंत को वन में मिली थी, जागेश्वरी डॉक्टर गोपाल को अस्पताल में मिली। वे दोनों परस्पर आसक्त हुए थे, यहाँ दोनों की माताओं का परस्पर आकर्षण हुआ। एक लाभ डॉक्टर गोपाल को प्राप्त था, पर जागेश्वरी को नहीं। वह यह कि डॉक्टर गोपाल ब्याह की बात जानते थे, और जागेश्वरी उससे सर्वथा अनभिज्ञ थी। वह तो जानती थी कि परीक्षा के बाद शायद..... चर्चा चले।

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"आगरा जाकर भूल जाओगी।"

जागेश्वरी—"नहीं-नहीं, क्यों भूल जाऊँगी?"

डॉक्टर—"कॉलेज का वातावरण घर की बातों को भुला देता है।"

जागेश्वरी—"आप भूलने की चीज़ नहीं। न-जाने कितने आपको याद रखते हैं। फिर मैं तो कॉलेज के वातावरण में थोड़ी देर रहती हूँ।"

डॉक्टर—"तो पत्र भेजेंगी?"

जागेश्वरी—"नहीं।"

डॉक्टर—"क्यों?"

जागेश्वरी—"पिताजी और भाई साहब की आज्ञा नहीं।"

डॉक्टर—"यदि मैं पत्र भेजूँ, तो?"

जागेश्वरी—"भाई साहब पढ़ेंगे, वही उत्तर देंगे।"

डॉक्टर—"तो आप बिलकुल परतंत्र हैं?"

जागेश्वरी—"यह तो समाज का नियम है, इसमें परतंत्रता की क्या बात?"

डॉक्टर—"आजकल की लड़कियाँ स्वतंत्रता से घूमती फिरती हैं।"

जागेश्वरी—"वह स्वतंत्रता नहीं, स्वच्छंदता है।"

डॉक्टर—"तो आपको अपने पर कुछ अधिकार नहीं?"

जागेश्वरी—"स्वच्छंदता का अधिकार नहीं।"

डॉक्टर—"तब आप कहीं आ-जा नहीं सकतीं?"

जागेश्वरी—"मा, बाप या भाइयों के साथ या किसी के साथ उनकी आज्ञा से।"

डॉक्टर—"फिर मेरे यहाँ कैसे आईं?"

जागेश्वरी—"प्रथम तो माताजी साथ हैं, फिर आपसे घरेलू बर्ताव हो गया है।"

इधर ये बातें हो रही थीं, उधर दोनो की माताओं में बातचीत प्रारंभ हुई—

जागेश्वरी की मा—"डॉक्टर साहब से पूछ लिया?"

गोपाल की मा—"वह तो भारत-माता की सेवा पर लट्टू है।"

जागेश्वरी की मा—"कौन रोकता है, करें।"

गोपाल की मा—"इसीलिये ब्याह से दूर रहना चाहता है।"

जागेश्वरी की मा—"ब्याह से तो एक के बदले दो भारत-माता की सेवा करेंगे।"

गोपाल की मा—"बड़ी कठिनाई से राज़ी कर पाया।"

जागेश्वरी की मा—"तो शाम को इसके पिता और भाई को भेजूँ?"

गोपाल की मा—"जैसी इच्छा।"

जागेश्वरी की मा ने पुनः भेंट करके पैर छुए, और कहा—"मेरी बेटी को अपनी बेटी की तरह रखना। सब काम कर लेती है, पर पढ़ने के कारण अभ्यास नहीं।"

गोपाल की मा ने कहा—"मुझे बहुत प्यारी है। मैं आँखों की पुतली बनाकर रक्खूँगी।"

ताँगेवाले ने बाहर से कहा—"माजी, गाड़ी का टाइम हो रहा है।"

विदा लेकर दोनों स्टेशन पर लौट आईं। इसी गाड़ी से जागेश्वरी के बड़े भाई और पिता, दोनों व्यक्ति आ गए। अब बाहर की बैठक में जागेश्वरी और उसकी भावज को छोड़कर शेष चारों व्यक्तियों की कमेटी बैठी। वकील साहब ने पूछा—"डॉक्टर साहब की उम्र क्या है?"

मा ने कहा—"बरस इक्कीस की सिया, सत्ताइस के राम।"

वकील साहब ने पूछा—"स्वास्थ्य कैसा है?"

करुणाशंकर ने कहा—"हज़ारों में एक। शील-स्वभाव उससे भी बढ़कर है। मा-बेटे, दोनों सौम्यता की साक्षात् मूर्ति हैं। क्रोध करना जानते ही नहीं। बिना माँगे ही पाँच-सात सौ मासिक मिल जाते हैं।"

दोनों बेटों के साथ बाप डॉक्टर से मिलने गए। पाँच बजे का समय रहा होगा। अस्पताल बंद हो रहा था। कंपाउंडर जा चुका था। कोई रोगी भी वहाँ न था। जाते ही परस्पर अभिवादन हुआ। डॉक्टर गोपाल ने सबको कुर्सियों पर बैठने का संकेत करके करुणाशंकर से पूछा—"आप लोगों का परिचय?"

करुणाशंकर ने कहा—"आप बड़े भाई और आप हमारे पिता हैं।"

डॉक्टर गोपाल ने बड़े भाई से सप्रेम हाथ मिलाया, और पिताजी को हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

अब सन्नाटा छा गया। करुणाशंकर ने स्तब्धता भंग करके कहा—"हम लोग आपके ब्याह के संबंध में आपके पास आए हैं।"

डॉक्टर गोपाल ने लज्जा से आँखें नीची करके कहा—"सारा अधिकार माजी को है।"

करुणाशंकर ने कहा—"तो मैं जाकर उनसे बात कर लूँ।"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"जैसी इच्छा।"

करुणाशंकर उठकर माजी के पास गए, और चरण छूकर कहा—"माजी, हम लोग डॉक्टर साहब के ब्याह के लिये आए हैं। क्या आज्ञा है?"

माजी ने कहा—"बेटा! हम लोग ग़रीब हैं, पीछे यह न कहना कि धोखा हुआ, इसलिये ख़ूब विचारकर कार्य करना चाहिए।"

करुणाशंकर ने कहा—"हम लोगों ने ख़ूब सोच-विचार लिया। केवल आपकी आज्ञा-भर की देर है।"

मा ने कहा—"मैं भी राज़ी हूँ, पर मोतीलालजी के पिता तथा मोतीलालजी को बुलवा लीजिए, क्योंकि हमारे ऊपर उनके बहुत उपकार हैं।"

करुणाशंकर—"बहुत अच्छा।"

मा—"ब्याह कब होगा?"

करुणाशंकर—"वैशाख में, जब बहन की परीक्षा हो जायगी।"

मा—"बरात कहाँ होकर जायगी?"

करुणाशंकर—"यहाँ से शिकोहाबाद ५-६ स्टेशन है, वहाँ से एक मील पर हरिपुरा।"

मा—"बरात के आदमियों का सेवा-सत्कार होना चाहिए, वे तो एक बार ही जायँगे।"

करुणाशंकर—"माजी! अपने-भर कुछ उठा न रक्खेंगे।"

करुणा जब तक भीतर बातें करने गए, तब तक वकील साहब और उनके पिता ने अस्पताल के पिछले वार्डों को देखने की इच्छा प्रकट की। घर देखा, रहन-सहन देखी, और सबसे बढ़कर डॉक्टर गोपाल का सरल स्वभाव देखा। अभिमान छू नहीं गया, बात करते फूल झरते हैं। सब लोग फिर डॉक्टर के कमरे में इकट्ठे हुए। मोतीलाल अब महराजिन को चाची कहने लगे थे। अंदर गए,

और कहा—"चाची, डॉक्टर साहब के ब्याहवाले आए हैं। क्या आज्ञा है?"

गोपाल की मा ने कहा—"छोटे लाला से पूछो; जो वह कहें, वही किया जाय।"

मोतीलाल ने कहा—"उन्हीं ने तो पुछवाया है।"

गोपाल की मा ने कहा—"सारा अधिकार छोटे लालाजी को है; जो चाहें, सो करें।"

मोतीलाल ने कहा—"बिरादरी और गोत्र आदि तो देखना आपका काम है। देन-लेन भी तय हो जाना चाहिए।"

गोपाल की मा ने कहा—"पुराने संबंधी हैं, फिर क्या पूछना? रहा देना-लेना—जो वे दे देंगे, वही ठीक है। हमें कुछ न चाहिए।"

मोतीलालजी ने आकर लालाजी से कह दिया कि सब ठीक है। पंडितजी बुलाए गए। पत्रा देखकर दूसरे दिन बरिच्छा (वर रोकना) की विधि साढ़े आठ बजे शुभ बतलाई गई। दूसरे दिन सबेरे आठ बजे ही ये लोग पहुँच गए। पंडितजी और नाई मौजूद थे। एक चाँदी की तश्तरी में दो गिन्नी रखकर करुणाशंकर ने डॉक्टर गोपाल को भेंट करके पान खिलाया, और पैर छुए। इसके बाद ५) छोटे लाला को और ५) मोतीलाल को भेंट के दिए गए। नाई और पंडितजी ने अपना हक़ पाया। ब्याह वैशाख में होना तय पाया। पंडितजी ने कहा—"डॉक्टर साहब, यह तश्तरी ले जाकर, माताजी के चरण छूकर उनके सामने रखना।"

सब लोग बिदा हो गए। मोतीलाल के साथ डॉक्टर गोपाल ने तश्तरी ले जाकर यथाविधि माताजी के सामने रख दी। करुणा एक गिन्नी माजी को भेंट दे गए थे। उनसे माजी ने कह दिया था कि मैं नाई के साथ शाम को तीन-चार बजे के बीच बहू की गोद भरने आऊँगी। डॉक्टर गोपाल बाहर बैठक में चले आए, मोतीलाल को

माजी ने रोक लिया। कंगन देकर कहा—"इनको साफ़ कराके, किसी मख़मली केस में रखवाकर एक अच्छी ज़नानी अँगूठी के साथ एक रेशमी साड़ी, एक ब्लाउज़, एक रूमाल तथा दस रुपए की मिठाई और दस रुपए के फल एक बजे तक भिजवा देना।"

मोतीलाल ने कहा—"कंगन बड़े भारी हैं। अब तो इतने भारी कोई बनवाता नहीं।"

माजी ने कहा—"हमारी ग़रीबी को ख़ूब जानते हो, पर भगवान् तो भक्त की परीक्षा लेकर फिर उसे शरण में ले लेते हैं।"

करुणा, उसके पिता और भाई लौट आए। अब घर में इस बात की खुलकर चर्चा होने लगी। करुणा के पिता ने कहा—"डॉक्टर की सज्जनता में संदेह नहीं।"

करुणा की मा ने कहा—"और उनकी माता साक्षात् देवी हैं।"

वकील साहब ने कहा—"तभी तो पुत्र वैसा ही हुआ। जागेश्वरी बड़ी भाग्यशालिनी है कि हम लोगों को बिना परिश्रम, बैठे-बिठाए ऐसा सुंदर घर-बर मिल गया।"

अब जागेश्वरी के कान खड़े हुए। उसकी भाभी ने माजी से पूछा—"क्या बात है?"

मा ने कहा—"डॉक्टर गोपाल के साथ जागेश्वरी का ब्याह तय हो गया। वैशाख में ब्याह होगा। तैयारी कर चलो।"

जागेश्वरी को जैसे काठ मार गया हो। चुप एक कोठरी में लज्जा से गड़ गई। कल तक जिन डॉक्टर गोपाल के साथ बेतक़ल्लुफ़ी से बातें कीं, उन्हीं के साथ आज ब्याह ठहर गया। यह सब होता रहा, और मुझे कानोकान ख़बर न हुई। माजी ने न बताया, तो भाभी ही कुछ कहतीं। पर भाभी तो अभी मा से पूछ रही थीं, इससे प्रकट है कि आज से पहले भाभी ने भी कुछ नहीं जाना। जागेश्वरी एक चारपाई पर लेटकर पुस्तक पढ़ने का बहाना करने लगी, पर मन में

तो विचार-तरंगें समुद्र की भाँति उठ रही थीं। और जो है, सो है; पर कल तक माजी से मिठाई माँग-माँगकर खाई, अब उनकी बहू बनकर बैठूँगी। जिस देवता के सामने हृदय खोलकर रख दिया, उनके सामने.....ना पड़ेगा। मन! तुम आज मुझे ऐसी जगह ले चलो, जहाँ कोई न हो। यह एकदम विस्फोट होकर क्या हो गया?

करुणाशंकर की स्त्री ने भोजन बनाया। माजी ने सहायता दी। सब लोग खा-पीकर एक बार फिर बाहर बैठक में इकट्ठे होकर बातें करने लगे। घर में रह गईं जागेश्वरी, उसकी भाभी और एक वर्ष का छोटा बच्चा। इन्हीं दोनों ने अभी तक भोजन नहीं किया था। करुणा की स्त्री ने जागेश्वरी से जाकर कहा—"ननद रानी! चलो, खाना खा लें।"

जागेश्वरी ने कहा—"मुझे भूख नहीं है।"

करुणा की पत्नी—"अभी से भूख बिदा हो गई, तो कैसे काम चलेगा? अभी तो भूमिका लिखी गई है, पुस्तक तो आगे लिखी जायगी।"

जागेश्वरी—"मुझसे मत बोलो।"

करुणा की पत्नी—"किससे बोलूँ? डॉक्टर साहब से?"

जागेश्वरी—"कह दिया, मुझे भूख नहीं है।"

करुणा की पत्नी—"मेरा भी ब्याह हुआ था, पर ऐसा प्रेम नहीं फट पड़ा था कि भूख भाग गई हो। हाँ, मैंने तुम्हारे भाई को नहीं देखा था, उन्होंने मुझे नहीं देखा था। तुमने तो देखा ही नहीं, खूब परखा भी, तभी शायद भूख भाग गई है। मेरी ननद रानी! चलो, थोड़ा ही खा लो। मैं भूख की दवा उन्हीं डॉक्टर से माँगा दूँगी, जिन्होंने फड़े के साथ दिल का ऑपरेशन भी कर दिया है।"

जागेश्वरी—"मुझे तंग मत करो।"

करुणा की पत्नी—"अभी से ये नख़रे! ब्याह हो जाने दो, ज़रा

लाड़-प्यार की बातें हो लें, तब 'तंग मत करो' की बात कहना। हाँ, यह तो बताओ, पहली मुलाक़ात कहाँ हुई थी? आगरे में? डॉक्टर हैं कि जादूगर, पहली ही मुलाक़ात में लोट-पोट कर दिया। और क्यों सुश्री जागेश्वरीदेवी, श्रीमती डॉक्टर साहबा! थोड़े दिन और धीरज धरतीं, हम लोग तो ब्याह की फ़िक्र में थे ही। ख़ैर, चलो अच्छा हुआ, तुमने पश्चिमी सभ्यता के अनुसार अपने अँगरेज़ी विचारों का श्रीगणेश करके अपना वर आप ढूँढ़ लिया, और ऐसा ढूँढ़ा कि क्या कहना! कोई स्वभाव की प्रशंसा करता है, कोई सुंदरता की। तुमने रूप और गुण-संयुक्त ख़ूब वर खोजा। हाँ, तो कोर्टशिप हुई कि नहीं?"

जागेश्वरी—(उठकर भाभी के मारने को तमाचा चलाया) "जाओगी या नहीं, छोटे दद्दा से कहकर ऐसी मरम्मत करवाऊँ कि याद करो।"

करुणा की पत्नी—"डॉक्टर साहब से कहकर वह फूलों की सेज बिछवाऊँ कि याद करो। तो अब आगरे जाने की आवश्यकता नहीं रही। डॉक्टर आप पढ़ा लेंगे। सारी विद्या पेट में भर देंगे। क्यों ननद रानी!"

जागेश्वरी—"भाभी! आज तुम्हें क्या हो गया है?"

करुणा की पत्नी—"हो कुछ नहीं गया है। मेरी ननद रानी का ब्याह आज ठहरा है, और ऐसी चूल से चूल मिली है कि कुछ न पूछो। वह डॉक्टर, यह डॉक्टरनी; वह गोपाल, यह भुवनमोहिनी जागेश्वरी; बस, जोड़ी मिलकर रह गई। और, सच पूछो, तो यह ब्याह न होकर स्वयंवर है। सीता के बाद द्रौपदी का और द्रौपदी के बाद जागेश्वरीदेवी डॉक्टरनी का स्वयंवर हो रहा है। बस, द्रौपदी के पाँच पति थे, यहाँ बेचारे अकेले डॉक्टर हैं। होगा, रंज न करो, तुम्हें चार वर और ढूँढ़ दूँगी। लो, एक छोटे दद्दा तुम्हारे, एक

हमारे दद्दा। अच्छा, इस समय इन दो पर ही संतोष करो, बाक़ी दो ढूँढ़ने का मेरा ज़िम्मा।"

जागेश्वरी—"मेरे सिर में दर्द है, परेशान न करो।"

करुणा की पत्नी—"डॉक्टर ढूँढ़ लिया गया है, दर्द की दवा भी आ जायगी। पर ननद रानी! हथेली पर आम तो नहीं जमता। आज ही ब्याह ठहरा, और अभी बुला दूँ। 'चट मँगनी, पट ब्याह' तो हमारे यहाँ होता नहीं। वैसे बेचारे बहुत सीधे हैं, बुलाते ही चले आएँगे। और, कहीं सुन पाया कि श्रीमती के सिर में दर्द है, तब तो फिर कुछ कहना ही नहीं।"

जागेश्वरी—"तुम्हारी बिनती करती हूँ, चुप रहो।"

करुणा की पत्नी—"अच्छा, आज शाम को चुपचाप चलकर मुझे डॉक्टर के दर्शन करा दो। बस, फिर मैं बोलूँ, तो चोर की सज़ा पाऊँ। मैं कहूँ कि यह मा के साथ दौड़-दौड़कर दूसरे-तीसरे क्यों जाती हैं? पहले तो मेरा माथा ठनका, पर यह सोचकर कि आज तक मेरी ननद ने किसी पर-पुरुष से आँखें मिलाकर बात नहीं की, वह क्या भला, किसी डॉक्टर के हत्थे चढ़ जायगी। पर नहीं, तुमने ख़ूब निबाहा। स्वपुरुष बनाकर ही बात की, पर-पुरुष से नहीं की। हाँ, तो कल क्या-क्या बातें हुई थीं?"

जागेश्वरी—"बहुत दिक़ करोगी, तो मैं अपना सिर फोड़ लूँगी।"

करुणा की पत्नी—"क्यों नहीं फोड़ लोगी। जब डॉक्टर को चेला बना लिया, तब सिर फूटने का क्या डर। झट मरहम-पट्टी करके ठीक कर देगा। मुझसे पूछो, फाँस लग जाय, काँटा लगे, हाथ-पैर टूटे, पर डॉक्टर क्या, डॉक्टर की हवा भी न लगे। अच्छा, अब चलकर खाना खा लो। मुझे भूख लगी है। अभी मुन्ना सोते से उठकर आफ़त मचाएगा।"

जागेश्वरी—"एक बार कह दिया कि भूख नहीं है।"

करुणा की पत्नी—"हज़ार बार कहती हूँ कि आएँगे, और बुला दूँगी। बैशाख दूर नहीं है। तीन महीने की बात है। २१ वर्ष काट डालीं, तो तीन महीने की क्या बिसात है? सबका ब्याह होता है, पर तुम्हारी तरह 'भूख नहीं है' का रोग नहीं लगता। जल्द चलो, नहीं तो मँगवाऊँ ताँगा, और भिजवा दूँ डॉक्टर साहब के अस्पताल कि यह मंदाग्नि का रोगी भरती कर लीजिए। इसे भूख नहीं लगती, सुदर्शन-चूर्ण देकर इसका रोग दूर कीजिए।"

जागेश्वरी—"भाभी! मैं तुम्हें बड़ा सीधा जानती थी।"

करुणा की पत्नी—"ननद रानी! मैं तुम्हें बड़ा सीधा जानती थी, तुम्हारे पेट में दाढ़ी निकली। तुम्हारे ये कर्तब! वह हाथ मारा है कि जी दाद देने को चाहता है। रोज़ आकर कहतीं—'भाभी! भूख कम है, आज मैं न खाऊँगी। माजी ने बहुत मिठाई खिला दी।' मैं क्या जानूँ कि माजी ही सासजी हैं।"

जागेश्वरी—"तब क्या आज मेरा प्राण लेकर ही छोड़ोगी?"

करुणा की पत्नी—"तुम्हारा प्राण लेने से बेचारे डॉक्टर बिना मौत मर जायँगे। बड़ी मुश्किल से तो उन्होंने इंद्र की परी पकड़ पाई है, उसे यों मरने देंगे? देव-लोक से अमृत लाकर उसे जीवित करेंगे। उत्तरी आफ्रिका की ख़ाक छानेंगे, सिंगापुर दौड़े जायँगे, दिल्ली के लाल क़िले में बेड़ियाँ खनकाएँगे, फाँसी का तख़्ता चूमेंगे, पर तुम्हें न मरने देंगे।"

जागेश्वरी—"भाभी! मैं तो जानती थी कि तुम कुछ नहीं जानतीं?"

करुणा की पत्नी—"मैं भी जानती थी कि मेरी ननद रानी कुछ नहीं जानतीं, पढ़ना-लिखना और घर, बस, इसके आगे कुछ नहीं, पर तुमने तो सारा कोक-शास्त्र छान मारा, दुनिया को अचंभे में डाल

दिया, घर-भर को वह करिश्मा दिखाया, जो बड़े-बड़े औलिया और पीर भी नहीं दिखा सकते। वह निशाना मारा है कि लक्ष्य-वेध हो गया। शायद महाकवि बिहारी ने तुम्हें ही देखकर यह दोहा बनाया था—

"तिय ! कत कमनैती सिखी, बिन जिह भौंह कमान ;
चल चित बेझो चुकत नहिं, बंक बिलोकनि बान।

"हे उर्वशी-रूपा, अप्सरा-स्वरूपा, महामहिमशालिनी श्रीश्री-जागेश्वरीदेवी ! आपने यह धनुर्विद्या कहाँ सीखी ? तुम्हारी भौंह-रूपी कमान बिना प्रत्यंचा की है, तुम्हारी तिरछी चितवन ही बाण है, चंचल चित्त (डॉक्टर गोपालजी का) तुम्हारा लक्ष्य है। इस प्रकार वेध देती हो कि निशाना चूकता ही नहीं। अब कृपा कर अपनी इस अनुचरी भाभी की प्रार्थना स्वीकार कर चलिए, और भोजन कर लीजिए।"

जागेश्वरी—"दे डालो सब व्याख्यान, कोई बाक़ी न रहे।"

करुणा की पत्नी—"कल सबेरे दादाजी के साथ चली जाओगी, तब व्याख्यान कौन सुनेगा ? इसलिये क्यों बाक़ी रक्खूँ ?"

इतने में माजी आईं और कहा—"बहू ! चौके से निपट गईं ?"

बहू ने कहा—"मा ! आज यह खाना नहीं खाती हैं।"

मा ने कहा—"क्या कहती हैं ?"

"कहती हैं, सास के हाथ की मिठाई खाऊँगी।"

मा ने कहा—"सचमुच, हँसी नहीं। करुणा ख़बर लाया है कि चार बजे गोद-भराई को वह आ रही हैं। तुम लोग झटपट तैयार हो जाओ।"

भाभी ने कहा—"अब खाना मत खाओ, कोई हर्ज नहीं। माजी आकर मिठाई खिलाएँगी। पर निरी मिठाई खाने से जी न भरेगा,

इसलिये चलकर थोड़ी-सी दाल-रोटी खा लो, फिर गोद-भराई होगी।"

जागेश्वरी ने कहा—"गोद-भराई क्या होती है?"

भाभी ने कहा—"पहले उठकर खाना खाने चलो, तब गोद-भराई, ब्याह, गौना, सब बता दूँगी।"

इतना कहकर भाभी जागेश्वरी को हाथ पकड़कर ले चली। दोनों ने खाना खाया। भाभी ने कहा—"तुम बाल ठीक करके कपड़े बदल लो। मैं तब तक घर झाड़ डालूँ।"

जागेश्वरी ने कहा—"मैंने जो बात पूछी, वह नहीं बतलाई?"

भाभी ने कहा—"तुम्हारी सासजी आएँगी, कोई आभूषण लाएँगी, और तुमको मिठाई देंगी। बस, चुपचाप बैठी रहना, सब हो जायगा।"

जागेश्वरी ने कहा—"भाभी, लज्जा से गड़ी जा रही हूँ, कैसे आँखें सामने करूँगी?"

भाभी ने कहा—"वही पति होंगे, और वही सास होंगी, फिर क्या हुआ है, जिसके लिये इतना बावैला मचाती हो? उन्हीं के घर तो गईं, कोई बुरा काम तो नहीं किया। निश्चिंत रहो, मैं सब सँभाल लूँगी।"

आँगन में बिछौना बिछाया गया। भाभी ने जागेश्वरी को कपड़े बदलवाकर एक कोठरी में बिठा दिया, और कहा—"जब मैं बुलाने आऊँ, तब चलना; यह नहीं कि सास को देखो, और गोद में जा बैठो।"

जागेश्वरी ने कहा—"भाभी! तुमने भी कुछ न बताया, मैं तो बेमौत मारी गई। अभी कल माजी के हाथ से मिठाई खाई, फिर उनके कमरे में जाकर डॉक्टरी करने लगी। रोगी आए, उन्होंने मेरे सामने कर दिए। हाल पूछा, और दवा लिख दी। और भाभी,

क्या बताऊँ, वैशाख में परीक्षा से लौटने पर उनके साथ काम करने का वचन ही नहीं दे आई, लिखकर रख आई। वे सब क्या कहते होंगे कि लड़की बड़ी ढीठ है। तुमने कुछ भी न सुना था? यह आज एकदम वज्र फट पड़ा।"

भाभी ने कहा—"माजी ने आज बताया कि जब तुम्हारे फोड़ा निकला था, तभी कुछ चर्चा चली थी। परसों शुक्र को खुलकर बात हुई। कल माजी गईं, तब तय हुआ, और आज पक्का हो गया। मैं कब बतलाती?"

जागेश्वरी ने कहा—"भाभी! कल माजी मुझे ले जाना न चाहती थीं, उन्होंने बहुत रोका, पर मैं न मानी, और कल ही की लज्जा मुझे दबाए डालती है। हाय! क्या कहते होंगे?"

भाभी ने कहा—"कुछ नहीं।"

इतने में माजी ने आकर कहा—"आ गईं।" इतना कहकर उन्हें लेने द्वार पर गईं। सत्कार से क़ालीन पर बिठाया। नाई मिठाई और फल लाकर रख गया। गोपाल की माजी के हाथ में एक झोला खद्दर का था, उसमें सामान रक्खा था। उसे उन्होंने अपने पास रख लिया। परस्पर प्रेमालाप होकर गोपाल की मा ने कहा—"बुलाइए, गोद-भराई कर दूँ।"

जागेश्वरी की मा ने बहू को संकेत किया, बहू जागेश्वरी को बुलाने गई। इधर छोटा मुन्ना गोपाल की मा से खेलने लगा, पर अपनी मा के आते ही उसके पास भाग गया। जागेश्वरी लज्जा में डूबी, संकोच में समाई, मंद-मंथर गति से आकर, गोपाल की मा के पास, सिर नीचा करके, बैठ गई, मानो कुछ जानती ही नहीं। गोपाल की मा ने अपने झोले में से केस निकाला, और उसमें से कंगन निकालकर जागेश्वरी को पहना दिए, अँगूठी लेकर बाएँ हाथ की अनामिका में पहनाई। अँगूठी ऐसी फ़िट बैठी, मानो

नापकर बनाई गई हो। थोड़ी-सी मिठाई एक रेशमी रूमाल में बंधी थी, वह और सारी, ब्लाउज़ निकालकर सामने रक्खा। मिठाई का रूमाल जागेश्वरी की गोद में रखकर पीठ पर हाथ फेरा, दोनों हाथ चूमे। रस्म पूरी हो गई।

जागेश्वरी की मा ने बहू को जलपान का संकेत किया। बहू ने तीन तश्तरियाँ लाकर गोपाल की मा के सामने पहले रक्खीं, एक में मिठाई, दूसरे में फल और तीसरे में नमकीन सामान था। दूसरी बार अपनी माजी के सामने वैसी ही तीनों तश्तरियाँ रक्खीं। तीसरी बार जागेश्वरी के सामने। जागेश्वरी की मा ने कहा—"और अपने लिये ?"

अपनी सास का संकेत पाकर बहू तीन तश्तरियाँ अपने लिये भी ले आई। जलपान प्रारंभ हुआ। सबने खाया, पर जागेश्वरी चुपचाप बुत बनी बैठी थी। गोपाल की मा ने कई बार कहा, पर जागेश्वरी ने न खाया, तब उन्होंने मिठाई का एक टुकड़ा उठाकर जागेश्वरी के मुँह के पास करके कहा—"खा लो, बेटा !" पर जागेश्वरी ने नहीं खाया। जब मा और भाभी ने कहा, तब जागेश्वरी ने वह टुकड़ा मिठाई का सास के हाथ से खा लिया, फिर एक टुकड़ा अपने हाथ से खाकर पानी पी लिया। पान-इलायची का सत्कार हुआ, तो गोपाल की मा ने कहा—"गोपाल कहता है—हम लोग रोटी-दाल खाते हैं, न कि पान-इलायची।"

गोपाल की मा ने सौ रुपए का नोट निकालकर जागेश्वरी के सामने किया, पर जागेश्वरी ने न लिया, तब गोपाल की मा ने जागेश्वरी को प्यार से खींचकर अपनी गोद में अधलेटा-सा कर लिया, उसे चूमा, प्यार किया, और कहा—"ये रुपए फल और मिठाई खाने के लिये हैं।"

जागेश्वरी ने तब भी नोट न लिया, तब गोपाल की मा ने वह

नोट उसकी जेब में रख दिया। अब जागेश्वरी उठकर बैठ गई, इधर गोपाल की मा ने विदा माँगी। "ठहरिए" कहकर करुणा की मा ने करुणा को बुलाया, और कहा—"यह जाना चाहती हैं।" "अच्छा" कहकर करुणा लौट गया। जागेश्वरी की मा ने २५) भेंट देकर समधिन के पैर छुए। करुणा ने २१) देकर कहा—"यह पिताजी की भेंट है।"

गोपाल की मा ने कहा—"तुम्हारी मा की भेंट काफ़ी है, अब किसी की भेंट की आवश्यकता नहीं।"

पर करुणा ने न माना, रुपए दे दिए। फिर ११) देकर कहा—"यह बड़े भाई साहब की भेंट है।" फिर ५) देकर कहा—"यह तुच्छ भेंट मेरी है।"

करुणा की मा ने समधिन पर ४) निछावर करके करुणा को दिए, और कहा—"२) नाई को और २) ताँगेवाले को दे देना।"

करुणा की बहू ने भी ५) भेंट किए।

गोपाल की मा ने १०) बहू पर निछावर करके जागेश्वरी की मा को देकर कहा—"नेगियों को बाँट देना।"

उन्होंने कहा—"बहुत रुपए हैं, दो रखिए।"

गोपाल की मा ने कहा—"इस बहू पर लाख रुपए निछावर कर दूँ, तो भी थोड़ा है।"

इतना कहकर उठ खड़ी हुईं। चलते समय बहू को चिपटाकर माथा सूँघा, पीठ पर हाथ फेरा, और हाथों को चूमा। फिर कहा—"यों तो जीवन-भर अकेली रही, पर आज इस संपदा को पाकर छोड़ने को जी नहीं चाहता। तीन महीने एक-एक दिन गिनकर काटूँगी।"

कहते-कहते उनका गला भर आया।

[११]

दोनो ओर से ब्याह की तेयारी होने लगी। डॉक्टर गोपाल अपने काम में लग गए। जागेश्वरी पढ़ने में जुट गई, और सब कुछ भूल-सा गई। पर गोपाल की मा को वस्त्राभूषणों की और बरात की चिंता थी। यदि अपने चार भाई-बंधु न हुए, तो ब्याह-बरात की क्या शोभा? आज उसे बाईस वर्ष बाद अपने देवर-जेठ और भाई-भतीजे याद आए। सोचा—जगतपुर जाकर देखूँ कि क्या हो रहा है। इतनी दुखी होकर आई थी कि बाईस वर्ष में एक बार भी किसी का स्मरण तक नहीं किया। बेटे से कहा—"एक दिन चलकर मुझे जगतपुर पहुँचा दो।"

गोपाल ने कहा—"अब तो सब बातें आपके इच्छानुसार हो रही हैं, जगतपुर ही क्या?"

मा ने कहा—"तभी तो आवश्यकता है। बिना अपने भाई-बंधुओं के ब्याह-बरात का क्या आनंद?"

गोपाल ने कहा—"मा! जहाँ से अत्यंत दुखी होकर भागी, बाईस वर्ष में एक दिन भी उन लोगों ने यह न सोचा कि गोपाल की मा जीती है या मर गई? ऐसे जगतपुर जाने को तेरा जी कैसे चाहता है?"

मा ने कहा—"सब कुछ ठीक है, पर भाई-बंधु आख़िर अपने ही तो हैं। दाँत जीभ को काट लेते हैं, पर दाँत तोड़ नहीं डाले जाते? फिर एक निर्धनता हज़ार दोषों की जननी है। 'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति' का ठीक उल्टा विचार लो। इसलिये सब कुछ

भूलकर एक दिन जगतपुर चलो। देखें, कौन मरा, कौन जिया? फिर आगे की बात सोचें।"

जगतपुर की तैयारी हो गई। बच्चों के लिये कुछ कपड़े और मिठाई रख ली। सवेरे खाना खाकर दस बजे चलने की ठहरी। शाम के लिये भी खाना बनाकर रख लिया कि न-जाने क्या बात पेश आए। ताँगा जगतपुर पहुँचा। 'बावले गाँव ऊँट आ गया।' कहाँ रहते हो? कहाँ जाओगे? किसके यहाँ जाओगे? बस, ये ही प्रश्न थे। ताँगा घर के सामने पहुँचा। दरवाज़े पर फूस के छप्पर में एक टूटी-सी चारपाई घर की निर्धनता की प्रस्तावना-सी लिख रही थी। द्वार पर कोई न था। सामान उतारकर उसी चारपाई के पास रक्खा गया। गोपाल की मा ने देहली पर मस्तक टेका, हाथ जोड़े, फिर घर के अंदर पैर रक्खा। आँगन में जाकर खड़ी हो गई। एक अधेड़ स्त्री मैले-कुचैले, फटे वस्त्र पहने, चौके में बैठी बहू पर कटु शब्दों की बौछार कर रही थी। आँगन में सुंदर वस्त्र पहने एक स्त्री को खड़ा देखकर अधेड़ स्त्री ने कहा—"क्यों आई?"

गोपाल की मा ने भाग्य से कहा—हाय रे भाग्य! बाईस बरस तक इन्होंने बात न पूछी, और आज पूछती हैं, क्यों आईं! फिर उन्होंने अधेड़ स्त्री से कहा—"काम से आई हूँ।"

अधेड़ स्त्री—"क्या काम है?"

गोपाल की मा—"बतलाऊँगी।"

अधेड़ स्त्री—"कहाँ रहती हो?"

गोपाल की मा—"यहीं।"

अधेड़ स्त्री—"तुम कौन हो?"

गोपाल की मा—"जो सामने खड़ी देखती हो, वही मैं हूँ।"

देवरानी ने जेठानी को पहचाना नहीं, सभ्यता के नाते इतना

भी नहीं कहा कि "बैठ जाइए।" तब गोपाल की मा ने सामने रक्खी हुई टूटी-सी चटाई उठाकर आँगन में बिछा ली, और उसी पर बैठकर घर को देखने लगी। इतने में गोपाल ने बाहर से कहा—"मा! ताँगे को जाने दूँ?"

मा ने भीतर से कहा—"हाँ, जाने दो।"

देवरानी अचभे में भरी बार-बार देखती और सोचती, भगवान! यह कौन है, जो इस तरह यहाँ आकर, अपने आप चटाई बिछाकर बैठ गई। देवरानी ने बहू को डाँटना बंद कर दिया। बहू चौके में भोजन बना रही थी। जुआर और बाजरे की रोटियाँ बन रही थीं। पालक के शाक में थोड़ा-सी उर्द की दाल डालकर पकाया गया था। बस, यही इस भोजन-भंडार का अमृत-तुल्य भोजन था। गोपाल की मा थोड़ी देर बैठी रही, फिर उठी, भीतर कमरे में जाकर चारों ओर दृष्टि फेंकी, गृहस्थी का सामान देखकर जान लिया कि दशा वही अब भी है, जो मैं बाईस वर्ष पहले छोड़ गई थी। गोपाल की मा को भीतर जाते देखकर देवरानी भी आ गई, और पूछा—"तुम कौन हो, जो इस तरह मेरे घर में घूमती फिरती हो?"

गोपाल की मा ने कहा—"मैं इस घर की मालकिन हूँ, इसलिये घूमती फिरती हूँ।"

अब देवरानी को क्रोध आ गया, बोली—"घर की मालिक मैं हूँ न कि तुम, निकलो घर से बाहर।"

गोपाल की मा ने कहा—"मेरे घर से मुझे निकालने का तुम्हें क्या अधिकार? तुम्हें निकलना चाहिए न कि मुझे।"

देवरानी ने कहा—"अजीब औरत है, मेरे घर को अपना घर बताती है। पागल तो नहीं है?"

गोपाल की मा ने कहा—"मैं पागल नहीं हूँ, तुम पागल हो, जो दूसरे के घर में रहत हो, और उसे अपना बताती हो! और,

घर की मालकिन से कहती हो कि बाहर निकलो। कैसी उल्टी बात है।"

देवरानी ने कहा—"अजब तमाशा है, मेरे घर को अपना घर बताकर 'उल्टा चोर कोतवाल को डाँट रहा है।'"

गोपाल की मा ने कहा—"यह घर तुम्हारा नहीं है; अगर है, तो दिखाओ बैनामा, या बताओ, इस घर में कब से रहती हो?"

अब तो देवरानी घबरा उठी, बोली—"बैनामा मेरे पास नहीं है, और क्यों हो, घर मेरे जेठ का था। अब बीस-बाईस वर्ष से मैं रहती हूँ।"

गोपाल की मा ने कहा—"अभी कहती थीं, घर मेरा है, अब कहती हो, मेरे जेठ का है। अपने आप झूठ बनती हो।"

देवरानी ने कहा—"तुम्हें इन बातों से मतलब?"

गोपाल की मा ने कहा—"मतलब न होता, तो यहाँ आती ही क्यों? अच्छा, घर के आदमी कहाँ हैं?"

देवरानी ने कहा—"खेती के काम से गए हैं, आते ही होंगे।"

गोपाल की मा ने कहा—"तुम्हारे पति कहाँ हैं?"

उत्तर मिला—"खेत पर सत्तू देने गए हैं। वह देखो, दरवाज़े किसी से बातें कर रहे हैं।"

गोपाल की मा ने देखा, उनके देवर रामचंद्र गोपाल से बातें कर रहे हैं। बातें करके वह अंदर आए। गोपाल की मा को देखा, ठुड्डी का मस्सा ज्यों-का-त्यों अपने स्थान पर वीर सिपाही की भाँति डटा हुआ अपने मालिक का परिचय दे रहा था। बाहर गोपाल से बातें करके जान ही चुके थे, पर अब सँभली भाभी के चेहरे को देखते ही मंद मुसकान के साथ आगे बढ़े, और भाभी के पैर छूकर पास बैठ गए। रामचंद्र की स्त्री को और भी अधिक अचंभा हुआ!

बार-बार घूर-घूरकर गोपाल की मा को देखने लगी। गोपाल की मा ने रामचंद्र से कहा—"कुशल से रहे ?"

रामचंद्र—"जो कुछ हैं, हाज़िर हैं।"

गोपाल की मा—"बच्चे कितने हैं ?"

रामचंद्र—"दो।"

गोपाल की मा—"यह बड़े की बहू है ?"

रामचंद्र—"हाँ।"

गोपाल की मा—"बड़े दादाजी के घर का क्या हाल है ?"

रामचंद्र—"भाई साहब तो कई वर्ष हुए, मर गए, उनके तीन बच्चे हैं—एक का ब्याह हो गया है, एक लड़का, एक लड़की और है।"

गोपाल की मा—"तुम्हारा घर क्या गिर गया ?"

रामचंद्र—"नहीं, उसमें बैलों और भैंसों को बाँधते हैं।"

गोपाल की मा—"देवरानी मुझे इस घर से बाहर निकलने को कह रही हैं।"

रामचंद्र ने अपनी स्त्री से कहा—"पहचाना नहीं, गोपाल की मा हैं।"

अब देवरानी के होश ठिकाने आए। उठी, और गोपाल की मा के पैर छूकर क्षमा माँगी। रामचंद्र ने पूछा—"गोपाल बैठा है न ?"

बड़ी सकुच के साथ उत्तर मिला—"हाँ। उसे बुला लो। सामान भी भीतर ले लो।"

रामचंद्र जाकर गोपाल को बुला लाए, सामान भी ले आए। मा के संकेत पर गोपाल ने चाचा-चाची के पैर छुए। रामचंद्र ने आशीर्वाद देकर पूछा—"बेटा, क्या करते हो ?"

उत्तर मिला—"डॉक्टर हूँ।"

मनुष्य की मुख-मुद्रा और वस्त्र उसके रहन-सहन का बाहरी

परिचय देते हैं। गोपाल तो कोट-पतलून में था। गोपाल की मा एक ऊनी स्वेटर पहने, श्वेत धोती के ऊपर एक हलके हरे रंग का शाल ओढ़े हुए थीं। होल्डआल में रज़ाई-गद्दा बँधे थे। यही सब देखकर रामचंद्र ने जान लिया कि गोपाल कुछ है। देवरानी ने बहू से कहा—"जीजी के लिये खाना बनाओ।"

गोपाल की मा ने कहा—"हम दोनो खाकर आए हैं। और यह देखो, इतना सामान खाने का साथ है।" फिर उन्होंने रामचंद्र से कहा—"चलो, यदुनाथ के घर भी हो लें।" चलते समय देवरानी से कहा—"घर में लौटकर आऊँ कि नहीं?" देवरानी ने हाथ जोड़कर क्षमा माँगी।

यदुनाथ के दो बच्चे हैं, और शेष दोनो भाइयों का ब्याह ही नहीं हुआ। बाप मर गया, मा जीवित है। यदुनाथ के घर पहुँचकर रामचंद्र, गोपाल की मा के कथनानुसार, चुप खड़े हो रहे। यदुनाथ घर में था, बोला—"चाचा, यह कौन हैं?"

रामचंद्र ने कहा—"अपनी मा से पूछो।"

मा ने ध्यान से देखा, पर बाईस वर्ष पहले की, इक्कीस वर्ष उम्र की अपनी मँझली देवरानी को, जो ग़रीबी की मार खाकर निकल गई थी, न पहचाना, और कहा—"ठाकुरों के घर कोई मेहमान आई हैं?"

गोपाल की मा ने कहा—"नहीं, आपके घर मेहमान आई हूँ।"

यदुनाथ की मा—"तुम कौन हो?"

गोपाल की मा—"जो सामने खड़ी हूँ, वही हूँ।"

यदुनाथ की मा—"कहाँ रहती हो?"

गोपाल की मा—"यहीं।"

यदुनाथ की मा—"मैंने तो तुम्हें कभी देखा नहीं।"

गोपाल की मा—"सैकड़ों बार देखा है।"

अब यदुनाथ की मा ने फिर ध्यान से देखा, पर न पहचान सकीं, और रामचंद्र से कहा—"कौन हैं ?"

रामचंद्र—"गोपाल की मा।"

यदुनाथ की मा—"कौन गोपाल ?"

रामचंद्र—"मँझले दद्दा का लड़का।"

यदुनाथ की मा—"कौन मँझले दद्दा ?"

रामचंद्र—"अच्छा, मँझले दद्दा को नहीं जानतीं, रामविलास दद्दा।"

"ओ हो ! गोपाल की मा हैं। आओ, बैठो। तुम तो मेम साहब बन गईं, मैं पहचान कैसे पाती ?"

गोपाल की मा ने पैर छूकर पूछा—"मैं मेम साहब कैसे बन गई ?"

जेठानी ने कहा—"उजले कपड़े-लत्ते पहने हो, जूता पहने हो, इससे मैंने ऐसा समझा।"

गोपाल की मा ने कहा—"उजले कपड़े और जूते पहनना मेमों की पहचान है, तो शहरवाली तमाम औरतें मेम साहब हैं। कभी इटावा गई हो ?"

उत्तर मिला—"इस झोपड़ी से निकलकर मरने पर ही बाहर जाऊँगी।"

रामचंद्र ने संक्षेप में बताया—"गोपाल भी आया है। डॉक्टरी करता है। खूब रुपया कमाता है।"

जेठानी ने कहा—"वह तो शक्ल-सूरत ही बताती है।"

गोपाल को वहाँ अकेले बैठे अच्छा न लगा। घूमने के लिये खेतों की ओर निकल गया। हरे-भरे गेहूँ और जौ के खेत लहलहा रहे थे। एक मील जाकर लौटा। जब गाँव के पास पहुँचा, तो एक इक्कीस-बाईस वर्ष के युवक ने पूछा—"कहाँ घर है ?"

गोपाल—"घर तो यहीं है, पर अब इटावे में रहता हूँ।"

युवक—"आप क्या करते हैं ?"

गोपाल—"मैं डॉक्टर हूँ।"

युवक—"यहाँ किसके यहाँ आए हैं ?"

गोपाल—"रामचंद्रजी के यहाँ।"

युवक—"वह आपके कौन हैं ?"

गोपाल—"चाचा।"

युवक—"आप शायद यहाँ बहुत दिनों बाद आए हैं ?"

गोपाल—"बाईस वर्ष बाद।"

युवक—"ओ हो ! तब तो मेरे जन्म से पहले की बात है।"

गोपाल—"आप अपना परिचय दीजिए।"

युवक—"मेरा नाम शेरसिंह है, और इस गाँव का ज़मींदार नाम-मात्र को हूँ।"

गोपाल—"नाम-मात्र को कैसा ?"

युवक—"पिताजी ऋण छोड़ गए थे, इससे ज़मींदारी पर ऋण हो गया।"

शेरसिंह बातें करते-करते गोपाल को अपने द्वार पर ले आया। आदर से बिठाया, पान-तंबाकू को पूछा, फिर प्रार्थना की—"मेरी स्त्री एक मास से बीमार है। हलका ज्वर है, भूख नहीं लगती। गोद में दो-तीन मास का बच्चा है। मा की बीमारी के कारण बच्चे को बड़ी मुश्किल है। यदि आप रोगिणी को देख लेने की कृपा करें, तो कृतज्ञ होऊँगा।"

गोपाल ने कहा—"बड़ी ख़ुशी से।"

रोगिणी को देखकर डॉक्टर गोपाल ने बताया—"आँतें ख़राब हैं, प्रसूति-ज्वर है, पर जाता रहेगा। आज और कल एनीमा दिया जाय, तो पेट सा... हो जाय। कल मैं दवा दूँगा।"

शेरसिंह ने कहा—"यहाँ एनीमा कहाँ मिलेगा ?"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"मेरे पास छोटा एनीमा है। चलो, मैं दे दूँ।"

शेरसिंह को डॉक्टर गोपाल ने विधि बता दी। एनीमा दिया गया। रात को तबियत कुछ हलकी रही। दूसरे दिन एनीमा देने के बाद डॉक्टर गोपाल ने दवा दी। बुख़ार नहीं आया। जो था, उसमें भी कमी हुई। शेरसिंह डॉक्टर गोपाल के कृतज्ञ हुए। दो रुपए भेंट किए।

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"यह मेरी जन्म-भूमि है। इस गाँव की सेवा करना मुझे क्यों नसीब होगा? मैं तो इटावे में रहूँगा, अतः इस गाँव के लोगों की सेवा मेरा परम धर्म है। ये रुपए रोगिणी की परिचर्या में लगाइए।"

जब डॉक्टर गोपाल शाम को देखने गए, तो ठकुराइन ने पैर पकड़ लिए, और कहा—"डॉक्टर साहब, आपने एक बार फिर जीवन दिया। मुझे तो जीने की आशा न थी। फिर बच्चे के लिये तो हर समय आफ़त ही थी।"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"पाँच-सात दिन लगेंगे। ख़ूब परहेज़ से रहो। जो खाना मैंने बताया है, बस, वही खाओ। बच्चे का बाल बाँका नहीं हो सकता।"

ठाकुर शेरसिंह चाहते थे कि मैं इस उपकार के बदले डॉक्टर गोपाल की कोई सेवा करूँ, पर डॉक्टर गोपाल उँगली न रखने देते थे। दूध, शाक, चारपाई आदि कुछ भी लेने से इनकार कर दिया। अब तो शेरसिंह के मन में डॉक्टर गोपाल के प्रति अपार श्रद्धा उत्पन्न हुई, मनुष्य है कि देवता। सामने से हटने को जी नहीं चाहता। दोनो समय रोगिणी को बड़े प्रेम से देखा, और किसी बात की इच्छा नहीं की।

---

[१२]

चाचा-चाची के घर का रूखा-सूखा भोजन बड़े प्रेम से गोपाल और उसकी मा ने खाया। शाम को रामचंद्र के सामने गोपाल के व्याह की बात कहकर बरात का प्रबंध करने को कहा। रामचंद्र बहुत प्रसन्न हुए, और कहा—"भाभी! हम किसी योग्य नहीं हैं, पर हाथ-पैर से जो सेवा बन पड़ेगी, हर समय तैयार हैं।"

गोपाल की मा ने कहा—"देवरानी या बहू में से एक को लेकर आप आएँ, और यदुनाथ भी ऐसा ही करें। मैं चिट्ठी भेजूँगी, तब तैयार रहना।"

ठाकुर नाहरसिंह मर चुके हैं। शेरसिंह की मा भी मर चुकी है। नथुआ को आतशक हो गई है। सारा बदन फूट निकला है। न कोई सेवा करनेवाला है, न दवा करनेवाला। मक्खियाँ भिनकती हैं, और मवाद में लथ-पथ पड़ा रहता है। डॉक्टर गोपाल ने उसे भी देखा, और दवा दी। शेरसिंह से कह दिया—"जब आप इटावा दवा लेने आएँ, तब इसकी दवा भी लेते आएँ।"

गोपाल की मा को जब ज्ञात हुआ कि शेरसिंह ठाकुर नाहरसिंह का लड़का है, और उसकी बहू की और नथुआ की दवा गोपाल करता है, तो गोपाल से कहा—"इसी शेर के बाप नाहर ने मुझे इस गाँव से निकाला था। तुम्हारे पिता के साथ वे-वे अत्याचार किए, जो कह नहीं सकती। तू उसकी बहू की दवा करने जाता है। दे दे ज़हर सारे घर को, जिससे मेरी छाती ठंडी हो जाय। और नथुआ? जी चाहता है, तलवार से उसका सिर उतार लूँ।

तू उसकी भी दवा करता है। जानता है, नथुआ कौन है? मेरा सतीत्व लेने की दुश्चेष्टा करनेवाला पामर। ऐसी जाने कितनी सतियों को सत से डिगाने की उसने चेष्टा की होगी, उसी का फल पा रहा है। कहो, तो चलकर पूछूँ, कि कहो नत्थू! ठाकुर के यहाँ ले चलोगे? हाय! तू उसी ठाकुर के लड़के और उसी यमराज नथुआ की दवा करता है। मैं कहती हूँ, दे दे ऐसी दवा, जिससे रोम-रोम फूट निकले। अपने पाप का प्रायश्चित्त कर ले। मुझे क्रोध आ जायगा, नहीं तो चलकर, नथुआ को देखकर उस पर थूक देती। भगवान्! तुम सचमुच कर्मों का फल देते हो। नाहरसिंह ठिकाने लग गए, नथुआ नरक भोग रहा है। ठीक ही कहा है—'जैसी करनी, वैसी भरनी।'"

गोपाल मा को उत्तेजित देखकर चुप हो गए। एक बार तो उनके हृदय को भी ठेस लगी कि ऐं! मेरी पूजनीया माता के साथ ये दुर्व्यवहार करनेवाले ठिकाने लगें, पर तुरंत ही सँभल गए। भगवान् तो उन्हें दंड देंगे ही। वे जो कर चुके हैं, उसका फल भोग रहे हैं, मैं जो करूँगा, उसका फल पाऊँगा। यह विचारकर, शांत होकर मा से कहा—"मा! आपका कहना ठीक है। पर सोचिए, इन्होंने जो कुछ आपके साथ किया, उसका फल ठीक वैसा ही पाया, और आपके ऊपर अत्याचार करके आपको निकाल देने का फल भी बड़ा सुंदर हुआ। यदि आप यहाँ रहतीं, तो जो दशा आज हमारे भाइयों की है, वही मेरी होती, और हम किसी की सेवा करने योग्य न होते। अब जो भगवान् ने हमें इस योग्य बनाया है, तो हमें अपकार का बदला उपकार से चुकाना चाहिए। मैं सेवा करूँगा, मेरी आत्मा प्रसन्न होगी, और इन लोगों का दुःख कुछ घट जायगा। इसलिये आत्मा से बदले का भाव निकाल दो। जो ठाकुर गाँव-भर के ज़मींदार थे, उनके घर की दशा आँखों देख

आया हूँ। मकान तो पुराना बना है, बाक़ी ढोल के अंदर पोल है। नथुआ के लिये क्या कहूँ ? तुम उसके रोम-रोम को फूटा हुआ देखना चाहती हो, वह सचमुच ऐसा ही है, और अच्छे होने की आशा दो आने-भर से अधिक नहीं है। दवा तो दूर, कोई पानी देनेवाला भी नहीं है। तब इन मरे हुओं को क्या मारूँ ? अत्याचार के कारण उनकी आत्माएँ मर गई हैं। शरीर से वे दुःख भोग ही रहे हैं। अब यदि मैं थोड़ी सेवा करके उनका दुःख बटा सकूँ : तो मा, तेरी कोख सफल हो जायगी। इसलिये मुझे ख़ुशी से आज्ञा दे कि मैं उनकी दवा करके उनका कष्ट कम कर सकूँ। शेरसिंह पीछे-पीछे फिरते हैं। उन्हें ख़बर नहीं कि उन्हीं के पिता के अत्याचारों के परिणाम-स्वरूप मैं ऐसा बन सका। अब उनकी सेवा से कैसे अलग होऊँ ? पत्थर मारने से पेड़ फल देता है। कुएँ में डोल डालने से वह पानी देता है। पृथ्वी-रूपिणी माता ! आप पृथ्वी का अनुकरण करें, जिस पर पाख़ाना-पेशाब, सब कुछ फेंका जाता है, पर पृथ्वी उस सबको परिवर्तित करके सुंदर फल, अन्न आदि देती है। मेरी मा ! मुझे परम प्रसन्नता से आज्ञा दे कि मैं इस जन्म-भूमि के बच्चे-बच्चे के काम आऊँ, फिर चाहे वह शत्रु ही क्यों न हो। डॉक्टर के सामने तो सब रोगी समान हैं, वहाँ भेद-भाव है ही नहीं। फिर, तेरा पुत्र होकर ऐसा जघन्य काम कैसे करूँगा ? क्या उससे मेरी पूजनीया माता का दूध कलंकित न होगा ? शेरसिंह की बहू का रोग दूर करूँगा, उसके बच्चे को बचाने का प्रयत्न करूँगा, और जो कुछ बन पड़ेगा, नथुआ के साथ भी करूँगा। भगवान् मुझे ऐसी ही बुद्धि दें।"

यह सुनकर गोपाल की मा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

डॉक्टर गोपाल शाम को शेरसिंह की पत्नी को देखने गए। बच्चा और उसकी मा, दोनो की दशा सुधार की ओर थी। शेरसिंह ने चाय

का सत्कार किया। डॉक्टर गोपाल ने कहा—"चाय अच्छी वस्तु नहीं, न मैं पीता हूँ, पर आपके आग्रह को टाल दूँगा, तो आप न-जाने क्या विचार करेंगे?"

शेरसिंह ने कहा—"डॉक्टर साहब! मैं आपको बड़ा भाई और ईश्वर का भेजा हुआ देवदूत मानता हूँ, अन्यथा कहाँ आप, कहाँ मैं? इस जीवन में आपका उपकार नहीं भूल सकता। मुझे यह भी बताया गया है कि मेरे पिता द्वारा माजी को बहुत सताया गया, उसका बदला आप इस उपकार से दे रहे हैं। मैं किसी योग्य नहीं हूँ कि बदला दे सकूँ। सोच-विचार के पश्चात् मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि इस गाँव में आपके पुरुषों की ज़मींदारी थी, उनसे मेरे पिता के हाथ में आई, और अब वह डावाँडोल दशा में है। एक मारवाड़ी सज्जन के यहाँ दख़ली रेहन है। आठ सौ के लगभग मालगुज़ारी है, और इतना ही लाभ है। उनका चार हज़ार रुपया मेरे ऊपर ऋण है। मेरे ऊपर पाँच सौ के लगभग और ऋण है। मैं चाहता हूँ, आप साढ़े चार हज़ार रुपया देकर अपनी ज़मींदारी ले लें। ज़मींदारियाँ ज़ब्त हो रही हैं, तो उनका बदला भी मिलेगा। कम-से-कम ८-१०गुना मालगुज़ारी का ज़रूर मिलेगा। ऐसी दशा में भी आपका रुपया वसूल हो जायगा।"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"मैं तो इस पचड़े में पड़ना नहीं चाहता। फिर, जो कुछ है, सब माजी का है, वही जो चाहें, करें।"

डॉक्टर गोपाल के साथ शेरसिंह भी आए। माजी के पैर छूकर कहा—"चाची! मैं आपका अपराधी हूँ। मैं उसका बदला चुकाना चाहता हूँ। आप अपनी ज़मींदारी ले लें। डॉक्टर साहब से मैंने कहा था, तो उन्होंने उत्तर दिया कि सारा अधिकार माजी को है।"

माजी ने आँखें उठाकर शेर को शेर की तरह देखा, पर मन के

भाव दबाकर कहा—"बाप-दादों की चीज़ है, रहने दो, क्यों बेचते हो ?"

शेरसिंह ने कहा—"माजी ! चीज़ तो आपके पुरुषों की है, हम तो थोड़े दिन के लिये ठेकेदार बन बैठे थे। अब आप अपनी चीज़ वापस लें। मेरा उद्धार करें, और मेरे पिता को क्षमा कर दें। मैं आपका लड़का हूँ, लड़के का सेवक हूँ। उनके उपकार से दबा हूँ। माजी ! शुद्ध हृदय से मुझे क्षमा कर दीजिए, और अपनी चीज़ वापस लीजिए।"

मा ने कहा—"सोचकर बताऊँगी।"

शेरसिंह बाहर उठकर डॉक्टर गोपाल के पास चले आए। माजी ने रामचंद्र से ये बातें कहीं, तो उनकी बाछें खिल गईं, चेहरा चमक उठा। बोले—"भाभी ! एक बार फिर हमारे घर ज़मींदारी आ जायगी। बाग़ और पँचपेड़ा के आम हम लोग फिर खाएँगे। ऐसा ज़रूर करना चाहिए। रुपया रक्खा न रहेगा, बात कहने को रह जायगी कि हमारे कुटुंब की गई हुई ज़मींदारी गोपाल लौटा लाया। सुपुत्र ही ऐसा कर सकते हैं। गोपाल हमारे वंश का भूषण है। यदि हम लोग अब भी ऐसा न कर सके, तो कब कर सकेंगे ?"

गोपाल, उसके चचेरे भाई और शेरसिंह बाहर के टूटे छप्पर में बैठे थे। हरनाथ ने कहा—"दद्दा ! लड़ाई पर कैसी बीती ? क्या-क्या दुख सहे ? ऐसी कोई बात सुनाइए।"

शेरसिंह ने भी समर्थन किया, तब डॉक्टर गोपाल ने कहा—"एक दिन हमारी फ़ौज ने आक्रमण किया। इटालियन सेना पीछे हट गई। हम लोग लौट पड़े। बालू के एक टीले के पीछे से इटालियन सेना की एक टुकड़ी निकल पड़ी। हम लोगों का स्वप्न में भी विचार न था कि शत्रु की कोई टुकड़ी यहाँ हो सकती है। इस धोखे से हुए

आक्रमण से हमारी फ़ौज तितर-बितर हो गई, और पीछे लौट पड़ी। मैं फ़ौज के पीछेवाले भाग में था, अतः शत्रु का दबाव पीछे ही पड़ा। मैं बालू के एक टीले की ओर बचने को गया। हमारे साथी आगे बढ़ गए। टीले के पीछे पहुँचने पर देखा, कुछ टैंक स्थान-स्थान पर टूटे-फूटे पड़े हैं। एक टैंक में से दो बंदूक़धारी इटालियन निकलकर मेरे सामने आ गए। उनमें से एक टूटी-फूटी अँगरेज़ी बोल लेता था। वे दोनो मुझे मार डालने पर उद्यत थे। मैंने अपने को डॉक्टर बताकर उन दोनो को रोकना चाहा। उस समय तो वे मान गए, पर शीघ्र ही उनका विचार बदल गया, और फिर मुझे गोली मारने को उद्यत हो गए। मैंने कहा—'अपने अफ़सर से पूछ देखो, डॉक्टर को गोली नहीं मारी जाती।' जो अँगरेज़ी बोल लेता था, उसने दूसरे सिपाही को अफ़सर के पास इसी पूछ-ताछ के लिये भेजा। अब वह और मैं अकेला रह गया। टीले के पीछेवाली इटालियन सेना थोड़ी ही थी, अतः उसने भी अपनी पिछली सेना से मिलने के लिये कूच कर दिया था। हम लोग यह बात टीले की आड़ के कारण न जान सके। जब वह सिपाही टीले के पीछे पहुँचा होगा, तब उसने देखा कि फ़ौज पीछे हट रही है, अतः वह भी उन्हीं के पीछे दौड़ा। हम दोनो थोड़ी देर तक बैठे रहे, और वह सिपाही न लौटा। अब उस मेरे साथवाले इटालियन सिपाही को चिंता हुई। रणक्षेत्र में पलक मारते पासा पलटता है। वह अपनी तेज़ आँखों से उस सिपाही के आने के मार्ग की ओर देखता था। समय अधिक गया जानकर तथा आस-पास कोई अपना आदमी न देखकर वह भी घबराया और बोला—'डॉक्टर! खड़े हो जाओ। मैं तुम्हें गोली मार दूँ, और चला जाऊँ! इस तरह कब तक तुमको घेर खड़ा रहूँगा। फिर नहीं मालूम, तुम कौन हो?' मैंने कहा—'मैं डॉक्टर हूँ, यह सबूत लो।' इतना कहकर, मैंने

जेब से एक काग़ज़ निकालकर उसे दिया। मैं देख रहा था कि मेरी मौत आ रही है। कुछ ही क्षणों की देर है। उसके पास बंदूक़ थी, मेरी जेब में पट्टियाँ थीं और मरहम। भला, मैं उससे कैसे लड़ता? पर, 'मरता क्या न करता?' मुझे एक बात सूझी---यह भी अकेला है, मैं भी अकेला। मैं इससे निर्बल नहीं हूँ। क्यों न इससे भिड़ जाऊँ। इस तरह कुत्ते की मौत मरना तो ठीक नहीं। वह सिपाही एक हाथ में बंदूक़ और दूसरे में काग़ज़ पकड़े उसे पढ़ने की चेष्टा कर रहा था। मैंने एक बार फ़ुर्ती से टीले की ओर देखा कि उसका साथी तो नहीं आ रहा है। जब वह मुझे आता न दिखाई दिया, तो मैंने उस सिपाही से भिड़ जाना ठीक समझा। आव देखा न ताव, मैं उसको चिपट गया। उसे स्वप्न में भी मेरे भिड़ने की आशा न थी, न वह इसके लिये उद्यत था, अतः पहली सरपट में ही मैंने उसे उठाकर दे मारा। वह चाहता था कि किसी तरह मेरे शरीर में संगीन घुसेड़ दे। अतः वह बार-बार बंदूक़ को झक-झोरकर छुड़ाने का असफल प्रयत्न कर रहा था। मुझे डर था कि यह मौक़ा पाते ही मार डालेगा। और, यदि इसका साथी आ गया, तब तो एक क्षण में ही काम तमाम हो जायगा। मुझे इस डर के कारण और भी जल्दी थी। बड़ी छीना-झपटी के बाद मैंने उससे बंदूक़ लेकर दूर फेंक दी। अब वह मुझे नोचने-खसोटने लगा। मेरी बाँह में उसने काट खाया। वह ठहरा ख़ूँख़ार सिपाही, मैं ठहरा दया दिखानेवाला डॉक्टर। किसी तरह इस गुत्थमगुत्थे में मैंने अपना दाहना हाथ छुड़ा पाया। मुझे क्रोध तो था ही, डर ने और भी हिम्मत बँधाई। एक घूँसा तानकर उसकी नाक पर मारा, ख़ून बह निकला। वह सँभलने को हुआ कि ज़ोर का एक तमाचा जमा दिया। अब उसने मेरा हाथ छोड़कर अपने दोनों हाथों से नाक और गाल को बचाना चाहा। मैं तड़ातड़ तमाचे लगाए जा

रहा था। जब मारते-मारते हाथ थक गए, तब उठकर ठोकरें लगानी शुरू कीं। किसी तरह बंदूक़ दिखाई पड़ गई। उसे उठाकर मैंने संगीन उसके पेट में भोंक दी। बाबू मैथिलीशरण के शब्दों में—

'जिसकी सिरोही, सिर उसी का, उक्ति यह कर दी सही।'

"अब वह भूमि पर पड़ा छटपटा रहा था। संगीन के दूसरे वार ने उसे यमलोक पहुँचा दिया। जल्दी से बालू में गढ़ा करके उसे दबा दिया। अब मुझे उसके साथी की चिंता थी। बार-बार उसी ओर सशंक दृष्टि से देख रहा था। पर अब बंदूक़ अपने पास भी थी, इससे हिम्मत दूनी हो गई। साथ ही सोचा—अगर वह अकेला लौटा, तो उसे भी ठिकाने लगा दूँगा। इसी ऊहापोह में था कि पीछे से आँधी के आने-जैसी आहट मिली। देखा कि अँगरेज़ी सेना नई कुमुक के साथ दौड़ी आ रही है। अब मैं क्या करूँ? यदि इस फ़ौज ने गोलियाँ चलाईं, तो अपनी ही गोलियों से मारा जाऊँगा। एक बात सूझी—टूटे हुए टैंक में घुसकर प्राण-रक्षा की जाय। मैं झट टैंक में घुस गया। फ़ौज के आने की आहट बराबर बढ़ती चली आ रही थी। इटालियन फ़ौज को भी ख़बर लग गई। दोनों ओर से गोलियाँ चलने लगीं। मैं टैंक में बैठा दोनों ओर की गोलियों की सनसनाहट सुन रहा था। अगर कोई गोली किसी टूटे छेद में होकर निकल आई, तो इसी में भुनकर रह जाऊँगा।

"यही विचार करते-करते शाम होने आई। तीन घंटे गोली चलने के बाद भी हार-जीत का निर्णय न हुआ। शाम को दो हवाई जहाज़ हमारी ओर के आए, और इटालियन फ़ौज पर बम बरसाने लगे। जब तक इटालियन हवाई जहाज़ आएँ, तब तक सेना मैदान छोड़कर भाग खड़ी हुई। हमारी सेना थोड़ा आगे बढ़ी, और हमारे टैंक से आगे हो गई। मैं झपटकर निकला, और

फ़ौज में मिल गया। इटालियन फ़ौज को खदेड़कर हम लोग अपने सुरक्षित मोर्चों पर लौट आए। इस प्रकार मेरी प्राण-रक्षा हुई।"

सुननेवालों के रोंगटे खड़े हो गए। डॉक्टर गोपाल से शेरसिंह ने पूछा—"ऐसे कितने अवसर आए?"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"यों तो नित्य ही मृत्यु के साथ खेलते थे, पर ऐसे मौक़े चार-पाँच ही आए।"

[१३]

शेरसिंह ताँगा ले आए, और डॉक्टर गोपाल ने तैयारी कर दी। गोपाल की मा ने स्वर्ग में पँचपेड़ा को हसरत-भरी निगाहों से देखा। ऐसा ज्ञात हुआ, मानो वृक्ष उन्हें अपने पास बुलाते हों। उनका जी भर आया। उन्होंने सोचा—पैसा हाथ का मैल है। आज है, कल नहीं रहेगा; बात कहने को हो जायगी।

इटावा पहुँचकर, वकील से सम्मति लेकर जगतपुर की ज़मींदारी का बैनामा लिखा लिया गया। डॉक्टर गोपाल और उनकी मा ने यह तय किया कि एक पंचायत गाँव में बना दी जाय, वही सारे गाँव का प्रबंध करे। स्कूल और लायब्रेरी रहे। गाँव का रोगी डॉक्टर गोपाल से मुफ़्त दवा कराए। मुनाफ़े का सारा रुपया गाँव के हितकारी कार्यों में व्यय किया जाय। कोई किसी को न सताए। जो पंचायत का कहना न मानकर अदालत में जाय, गाँववाले उसका अदालत में साथ न दें। गाँव का कोई लड़का या लड़की अपढ़ न रहे। बड़े-बूढ़ों को भी पढ़ाया जाय। एक व्यायामशाला बनाई जाय। उसमें जो करने योग्य हों, वे व्यायाम करें, तथा लाठी, फरी-गदका आदि का अभ्यास करें। सारा गाँव विपत्ति में एक दूसरे की सहायता करे। यदि कोई निर्धन, अपाहिज, विधवा हो, तो उसकी सहायता की जाय। इस गाँव से मुनाफ़ा का एक पैसा भी डॉक्टर गोपाल न लेंगे।

थोड़े ही दिनों में गाँव का स्वास्थ्य सुधर गया। जिन गलियों में कीचड़ रहता था, वे साफ़-सुथरी रहने लगीं। पंचायत ने तय किया

कि जिसके एक हल चलता हो, वह गाय या भैंस ज़रूर पाले। जानवरों की अच्छी नस्ल के लिये भी प्रयत्न किया गया। सारे गाँव का अनाज या अन्य विक्रयार्थ वस्तुएँ पंचायत द्वारा अच्छे दामों पर बेची जाने लगीं। पंचायत ने सब लोगों की सुविधा के नियम बनाकर गाँव की ख़ूब उन्नति की।

डॉक्टर गोपाल के ब्याह से आठ दिन पहले रामचंद्र अपनी स्त्री और रामनाथ की बहू तथा एक बच्चे के साथ इंटावा आ गए। ब्याह की तैयारी होने लगी। घर का काम-काज स्त्रियों ने सँभाला, बाहर की दौड़-धूप शेरसिंह ने की, वस्त्राभूषणों के लिये मोतीलाल ने प्रबंध किया। शेरसिंह ने रात-दिन दौड़-धूप कर एक कर दिया। पहले तो माजी को शेरसिंह से घृणा थी, पर धीरे-धीरे वह मिट गई, और अब ब्याह का काम तन्मयता से करते देखकर माजी को शेर पर प्यार हो गया। "शेर! भूखा होगा, कुछ खा ले।" जब इस प्रकार माजी कहतीं, तब शेरसिंह नम्रता से कहते—"माजी! बाज़ार से अमुक-अमुक वस्तु लानी है। यह काम करके तब खाऊँगा।"

सत्य है, घृणा से घृणा और प्रेम से प्रेम पैदा होता है।

जागेश्वरी की परीक्षा जिस दिन समाप्त हुई, उसके चौथे दिन ब्याह की शुभ साइत थी। बरात का आतिथ्य ख़ूब किया गया। नाम के मालिक मोतीलाल के पिता, यथार्थ मालिक मोतीलाल और काम के मालिक शेरसिंह थे। बरात में किसी प्रकार की कोई अड़चन नहीं हुई। न ठहरौनी थी, न कुछ माँगा गया; जो मिला, वह प्रसन्नता से ग्रहण किया गया। हँसी-ख़ुशी, बरात लौटी। वधू के गृह-प्रवेश के लिये पंडितजी ने दूसरे दिन सबेरे ९ बजे शुभ साइत बतलाई, अतः वधू मोतीलालजी के घर उतारी गई। शाम को जब मोतीलाल खाना खाने गए, तो हीरालाल और मोतीलाल की पत्नियों

ने डॉक्टर गोपाल को बधाई दी, और कहा—"गोपालजी ! किस जन्म के पुण्य से यह कोहनूर हीरा पाया ?"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"क्या बात है भाभी ?"

मोतीलाल की पत्नी ने कहा—"रूप, गुण, शील-स्वभाव और नम्रता में देवीजी एक ही हैं। जी चाहता है,.....।"

डॉक्टर गोपाल ने पूछा—"क्या जी चाहता है ?"

मोतीलाल की पत्नी—"यही कि देवरानी को कभी अलग न करूँ।"

डॉक्टर गोपाल—"तो अलग न कीजिए।"

मोतीलाल की पत्नी—"हज़ारों अरमानों के बाद आपने उसे पाया है, तब कैसे अलग न करूँ ?"

डॉक्टर गोपाल—"भाभी ! एक भी अरमान नहीं।"

मोतीलाल की पत्नी—"जब बहुत दिनों तक दवा की, आना-जाना रहा, तब अरमान की क्या बात ?"

डॉक्टर गोपाल—"अपने घर रहने दीजिए।"

मोतीलाल की पत्नी—"माजी से तो पूछिए, जो द्वार तक आ-आकर लौट जाती होंगी।"

डॉक्टर गोपाल—"मा की बात माजी जानें।"

मोतीलाल की पत्नी—"और आपकी बात मैं जानती हूँ।"

डॉक्टर गोपाल—"वह क्या ?"

मोतीलाल की पत्नी—"आँखों के द्वारा इस रूप-रस को पी जाऊँ।"

डॉक्टर गोपाल—"आज तक कभी आपने मेरी दृष्टि ऐसी देखी ?"

मोतीलाल की पत्नी—"कभी नहीं, पर आज की बात और है।"

मोतीलाल की स्त्री ने जागेश्वरी से भी छेड़-छाड़ की, पर एक

चुप सौ बातों को हराती है। प्रातः आठ बजे गृह-प्रवेश के लिये सेठजी के घर की स्त्रियाँ जागेश्वरी को लेकर 'रमा-विलास' के द्वार पर गईं। माजी सचमुच द्वार पर दृष्टि लगाए थीं। गृह-प्रवेश के पश्चात् सेठानी ने अपनी महराजिन से कहा—"गोपाल की मा! बहू देखकर जी चाहता है कि अपने घर ले जाऊँ।"

गोपाल की मा ने कहा—"आपके घर तो थी ही, फिर क्यों आने दिया?"

गोपाल की मा ने सबको जलपान कराया, फिर बिदा किया। अब घर के लोग रह गए। गोपाल की मा बहू को एकांत कमरे में ले गईं। गोद में बिठाकर, हाथ चूमकर कहा—"इतनी दुबली कैसे हो गई?"

जागेश्वरी ने कहा—"माजी! परीक्षा के दिन थे, कठिन परिश्रम करना पड़ा। रात को तीन-चार घंटे सोती थी।"

माजी उठीं, और दो ताजे ख़रबूज़े ले आईं। अपने हाथों काट-काटकर तश्तरी में रक्खे। बहू से खाने को कहा, पर उसने कहा—"जब तक आप न खायँगी, मैं कैसे खा सकती हूँ?"

माजी ने थोड़ा-सा टुकड़ा अपने मुँह में रखकर अपने हाथों जागेश्वरी को ख़रबूज़े खिलाना प्रारंभ किया। "आप कष्ट न उठाएँ।" कहकर जागेश्वरी स्वयं ख़रबूज़े खाने लगी। माजी ने शरबत बनाकर पिलाया, और गोद में बिठाकर दुलार करने लगीं। दोपहर को खाना खिलाकर बहू को आराम करने को कमरे में भेज दिया। माली को एक रुपया देकर कहा—"शाम को बहुत-से फूल लेकर मालिन को भेजना।"

शाम को मालिन फूल लेकर आई। गोपाल की मा ने कहा—"छत पर दो पलँग बिछे हैं, उन पर फूल बिछा दे।"

डॉक्टर गोपाल कई दिन बाद अस्पताल में आए थे। रोगियों

की भीड़ लगी थी। दोपहर तक जैसे-तैसे छुट्टी मिली। शाम को चार बजे अस्पताल खुलता था, पर रोगी तीन बजे ही आ गए। डॉक्टर गोपाल ने कमरा खोला, और कार्य प्रारंभ कर दिया। शाम के छ बजे एक वकील साहब बुलाने आए कि बहू की तबियत ख़राब है। डॉक्टर गोपाल उनके साथ गए। देखने तो एक रोगी को गए थे, पर वहाँ कई एक रोगी देखने पड़े। चार पैसे मिले, पर देर हो गई, तब वकील साहब ने कहा—"खाना तैयार है।"

डॉक्टर गोपाल ने इनकार किया, पर वकील साहब ने एक न सुनी। खाना खाकर गप-शप उड़ने लगी, और रात के दस बज गए। गर्मियों में दस बजते क्या देर लगती है? डॉक्टर गोपाल जब घर चलने लगे, तो वकील साहब ने एक अँगूठी देकर कहा—"ब्याह की बधाई! और बहू के लिये यह अँगूठी भेट!"

डॉक्टर गोपाल ने लेने से साफ़ इनकार किया, पर देनेवाले और जानेवाले को कोई रोक नहीं सकता। वकील साहब ने डॉक्टर गोपाल की जेब में अँगूठी डाल दी।

ग्यारह बजे के लगभग डॉक्टर गोपाल घर पहुँचे। मा ने पहुँचते ही आड़े हाथों लिया—"तुझे न दीन की ख़बर है, न दुनिया की। तू मुझे तो कुछ गिनता ही नहीं। यह भी नहीं जानता कि अब तू गृहस्थ हो गया है। तू उस हाथी के समान है, जो अपने पैर की ज़ंजीर का तनिक भी ध्यान नहीं रखता। अब आधी रात को छुट्टी पाई है।"

गोपाल ने कहा—"मा! वकील साहब के यहाँ रोगी देखने गया था, फिर वहाँ कई रोगी देखे, अतः देर हो गई। वकील साहब ने खाने का आग्रह किया, इससे और देर हो गई।"

मा ने कहा—"तो खाना खाकर आया है?"

गोपाल ने कहा—"क्या करता? उन्होंने किसी तरह नहीं माना,

और (जेब से अँगूठी निकालकर) यह अँगूठी भी ज़बर्दस्ती मेरी जेब में डाल दी।"

मा ने अँगूठी देखकर कहा—"बहू के लिये दी होगी।"

जो रुपए वहाँ मिले थे, वे भी जेब से निकालकर गोपाल ने मा को दिए।

मा ने कहा—"जा, ऊपर जाकर सो जा।"

डॉक्टर गोपाल छत पर पहुँचे। बराबर-बराबर दो पलँग बिछे थे, जिन पर सिरहाने की ओर आधी चारपाई पर फूल बिछे थे। एक पर श्रीमती जागेश्वरीदेवी निद्रा में मग्न थीं। डॉक्टर गोपाल ने उस उजेली रात में जागेश्वरी के मुख-मंडल को देखा। वह पहले से अधिक सुंदरी प्रतीत हुई। और समीप गए, तो सुंदरता में चार चाँद लग गए। मतिराम कवि के शब्दों में—

"ज्यों-ज्यों निहारिए नेरे ह्वै नैननि,
त्यों-त्यों खरी निकरै-सी निकाई।"

एक ओर चंद्र की चाँदनी छिटकी हुई थी, दूसरी ओर जागेश्वरी-देवी का मुख-चंद्र अपनी आभा फैला रहा था। डॉक्टर गोपाल चकोर बने उस रूप-रस का पान करने में निमग्न थे। जिस तपस्वी ने इतनी उम्र में कभी चित्त को चलायमान न होने दिया था, जो मेडिकल कॉलेज में पाँच वर्ष तक कुमारी नर्सों के बीच अटल रहा, रण-क्षेत्र की नर्सें जिसको कभी अपनी ओर आकर्षित न कर सकीं, सिंहापुर और इंफ़ाल के रण-क्षेत्र का वह वीर सिपाही आज गृहस्थ-धर्म पालन करने के लिये अपनी अर्द्धांगिनी को प्यार-भरी दृष्टि से देख रहा है! लाशों और घायलों के बीच जो निर्मोही बनकर घूमता था, सनसनाती गोलियों और दनदनाते हुए गोलों के बीच जो अपने कर्तव्य-पालन में नहीं डरता था, घायल सिपाहियों का अंग-भंग करते जिसका दिल न दहलता था, रोगियों का

ऑपरेशन करते समय जिसकी चित्त-वृत्ति दृढ़ रहती थी, आज अपनी पत्नी के पलँग पर पैर रखते हुए उसके दिल में धड़कन होती है! ठीक ही है, कामदेव के पंचशर ने किसे घायल नहीं किया?

डॉक्टर गोपाल ने एक बार सोचा—सोने दो, क्योंकि—

"तनिक काम के लिये मित्र, सोते को जगाना ना चहिए।"

पर फिर विचार बदल गया, और अपनी प्रेयसी को प्यार करने को जो चाहा। धीरे से पलँग पर लेट गए, किंतु महीनों से पूरी नींद न सोनेवाली जागेश्वरी की आँख न खुली। फिर, पहली नींद में तो ऐसा साँप सूँघता है कि मौत से बाज़ी लग जाती है। डॉक्टर गोपाल ने दाहनी टाँग उठाकर जागेश्वरी के ऊपर रख दी। अब वह कुनमुनाकर अँगड़ाई लेती हुई जागी, और उठकर बैठने की चेष्टा करने लगी कि डॉक्टर गोपाल ने दाहने हाथ से तनिक उठी हुई जागेश्वरी को फिर लिटा दिया, और कहा—"डॉक्टर रोगी की परिचर्या करनेवालों से कहता है कि यदि रोगी सो जाय, तो जगाकर दवा मत देना। रोगी का सो जाना बहुत बड़ी प्राकृतिक दवा है। पर मैंने आपको, इतना जानते हुए भी, जगा दिया। मैं अपने इस अपराध की क्षमा चाहता हूँ।"

कोई उत्तर न मिला, तब डॉक्टर गोपाल ने कहा—"क्या मैं यह समझूँ कि मेरे इस अपराध का बदला मौनावलंबन से लिया जा रहा है?"

अब भी जागेश्वरी चुप रही, और अपनी एक उँगली साड़ी के छोर पर धीरे-धीरे फेरने लगी। डॉक्टर गोपाल ने कहा—"यह उँगली क्या है, घड़ी का पेंडुलम है, जो अपनी नियमित गति से चल रहा है।"

जागेश्वरी ने उँगली चलाना बंद कर दिया। डॉक्टर गोपाल ने

कहा—"घड़ी का चलना बंद हो गया, शायद कूकने की आवश्यकता है।"

इतना कहकर मंद मुस्कान के साथ जागेश्वरी की ओर देखा। उसने तीव्र कटाक्ष से उनकी ओर देखकर फ़ौरन् दृष्टि हटा ली। डॉक्टर गोपाल की उँगलियों ने शरारत की, तो जागेश्वरी ने अपने बाएँ हाथ से उनका दाहना हाथ पकड़कर शरारत रोक दी। डॉक्टर गोपाल ने कहा—"मुँह का एक शब्द सुनने को तरसता हूँ। हाथ से शरीर स्पर्श नहीं कर सकता। इससे तो बिना ब्याह के अच्छा था कि खुलकर बात तो कर लेता था, और इससे बढ़कर काग़ज़ पर प्रमाण के लिये लिखा तक लेता था। ब्याह करके तो मैं घाटे में हुआ जाता हूँ।"

जागेश्वरी के ओठों पर मंद हास प्रतीत हुआ, पर उत्तर कुछ न दिया। डॉक्टर गोपाल ने कहा—"अच्छा, मैं विवाह की क्रिया वापस लेता हूँ, जिससे मैं श्रीमती के मधुर शब्द सुनने का सौभाग्य प्राप्त कर सकूँ।"

अब भी जागेश्वरी का मौन भंग न हुआ। डॉक्टर गोपाल ने कहा—"किसी चतुर सर्जन ने, शरीर के किसी अंग में, ऐसा इंजेक्शन तो नहीं लगा दिया, जिससे बोलना बंद हो गया हो?"

अब जागेश्वरी को हँसी आ गई। उसने कहा—"आप यह अपनी रिसर्च बंद न करेंगे?"

"परम सौभाग्य" कहकर डॉक्टर गोपाल ने उन अधरों का मधुर रस पान कर लिया, जिन्होंने उपर्युक्त शब्द कहे थे।

---

[१४]

आठ दिन ससुराल में रहकर जागेश्वरी मायके चली गई। पंद्रहवें दिन द्विरागमन हो आया। माजी बहू को स्वस्थ बनाने में लगी हैं। डॉक्टर गोपाल उसे जनता की सेवा का पाठ पढ़ाने में लगे हैं, पर माजी रोज़-रोज़ टाल देती हैं।

एक दिन एक दुर्घटना हो गई। आगरे के एक सेठ, अपनी कार से, बाल-बच्चों के साथ, अपने किसी संबंधी के उत्सव में सम्मिलित होने इटावे आ रहे थे। आगे-आगे धूल उड़ाता हुआ एक ठेला जा रहा था। जिस समय कार ने ठेले को पास किया, संयोग से इटावे से आगरे जाती हुई लॉरी भी उसी समय आ गई। उस धूल में सेठजी का ड्राइवर अच्छी तरह देख न पाया। उधर लॉरी का ड्राइवर पूरी चाल से चला आ रहा था। अचानक लॉरी और कार में टक्कर हो गई। कार में ड्राइवर, सेठजी, उनकी स्त्री, पुत्र-वधू और चार वर्ष का उसका बच्चा था। ये पाँचों आदमी घायल हुए। बच्चे की जाँघ की हड्डी टूट गई। सेठानी का सिर फट गया। बहू को ऐसा धक्का लगा कि दोनों हाथ घायल होकर वह बेहोश हो गई। सेठजी की पीठ में एक कील घुस गई, और ड्राइवर का बायाँ हाथ टूट गया।

लॉरी एक ओर को झुक गई, उसका पहिया टूट गया। छ-सात यात्री उसमें भी घायल हुए, किंतु कार के यात्रियों के समान कोई ख़तरनाक रोगी न था। ठेलेवाले ने भागकर इटावे में सूचना दी।

सेवा-समिति के स्वयंसेवक कार लेकर डॉक्टर गोपाल के घर गए। उन्होंने घर में जाकर मा से कहा—"माजी, कार और लॉरी लड़ जाने से कई आदमी घायल हुए हैं, फ़ौरन् भेजिए।" अँगरेज़ी में जागेश्वरी से कहा—"बिना एक सेकंड की देर किए चलिए।"

जागेश्वरी जैसी बैठी थी, वैसी ही उठ खड़ी हुई, और मा से कहा—"माजी, मैं जाती हूँ।"

मरहम-पट्टी का सामान कार में रखकर डॉक्टर-दंपति पलक मारते उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ दुर्घटना हुई थी। जागेश्वरी को कार के आहतों का काम सौंपा गया, क्योंकि वहाँ स्त्रियाँ भी आहत थीं। डॉक्टर गोपाल लॉरी के रोगियों की शुश्रूषा में लग गए। ख़ून धो-धोकर पट्टियाँ बाँधी जा रही थीं। पर दर्शक कार के आहतों की परिचर्या देखने में मग्न थे, जहाँ श्रीमती जागेश्वरीदेवी की गोरी-गोरी उँगलियाँ बड़ी तेज़ी के साथ काम कर रही थीं। सबसे पहले बहू को लिया। होश में लाने का प्रयत्न करके, दोनो हाथों पर पट्टी बाँधकर एक स्वयंसेवक से कहा—"जल्दी लॉरी आनी चाहिए, जिससे यह रोगी जल्द-से-जल्द अस्पताल पहुँचे।"

जिस कार पर डॉक्टर गोपाल आए थे, उसी कार पर स्वयंसेवक भागकर लॉरी लेने गया। इधर जागेश्वरी ने बहू को ठीक करके सेठानी की मरहम-पट्टी की। फिर बच्चे की जाँघ की हड्डी बाँधने के लिये डॉक्टर गोपाल को बुलाया। दोनो ने मिलकर बच्चे की टाँग ठीक तौर से बाँध दी। अब सेठजी को दोनो ने ठीक किया। फिर डॉक्टर गोपाल लॉरी के एक आहत की पट्टी बाँधने चले गए, तब तक जागेश्वरी ने ड्राइवर की मरहम-पट्टी की। जागेश्वरी के कार्य को देखकर दर्शकों ने कहा—"धन्य है!"

किसी ने कहा—"आप कौन हैं?", तो स्वयंसेवक ने उत्तर दिया—"डॉक्टर गोपाल की श्रीमतीजी।"

अब तो दर्शकों ने प्रशंसा के पुल बाँध दिए। भगवान् इस डॉक्टर-दंपति को चिरायु करें। डॉक्टर जागेश्वरी की बिना कहे-सुने घोषणा हो गई। देखते-देखते हज़ारों आदमी जमा हो गए। एक प्राइवेट डॉक्टर और आ गए, पर तब तक डॉक्टर गोपाल और उनकी श्रीमती का कार्य समाप्त हो आया था। लोगों ने अस्पताल की सहायता के लिये चंदा इकट्ठा किया। स्वयंसेवक ने बताया—"८५०) जमा हो गए।"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"ड्रेसिंग आदि की व्यवस्था मैं करता रहूँगा, और बाक़ी सेवा-शुश्रूषा में यह रुपया ख़र्च किया जाय।"

रोगी अस्पताल में लाए गए। सेठ के घर तार दिया गया। संबंधी पहली गाड़ी से आ गए, और रोगियों से आगरे चलने का अनुरोध किया, किंतु सेठानी, बहू, सेठ आदि सबने कहा—"यहाँ से अच्छी दवा कहीं नहीं हो सकती। ऐसे सहृदय और दयालु डॉक्टर तथा उनकी पत्नी कहाँ मिलेंगे?"

डॉक्टर-दंपति के परिश्रम से रोगियों ने थोड़े ही दिनों में आरोग्य लाभ किया। चलते समय सेठानी ने डॉ० जागेश्वरी को और सेठ ने डॉक्टर गोपाल को अच्छी भेंट देनी चाही, पर दोनों ने एक ही उत्तर दिया—"ऐसे विपत्ति के समय में सेवा करना हमारा कर्तव्य था, उसका पुरस्कार लेना पाप है।"

विवश होकर सेठ ने दो कमरे अस्पताल में बनवा दिए।

इस घटना के फल-स्वरूप डॉक्टर-दंपति की आय में ख़ूब वृद्धि हुई। अब डॉक्टर जागेश्वरी बराबरवाले कमरे में बैठने लगीं, और स्त्रियों की चिकित्सा तथा बच्चों के रोगों की दवा विशेष रूप से वही करने लगीं। स्त्रियों को देखने जाने का कार्य भी धीरे-धीरे उन्हीं के ज़िम्मे हो गया। शहर के बाहर से भी बुलावे आने लगे। पर बाहर या तो डॉक्टर गोपाल जाते, या दोनों। आस-पास डॉक्टर-

दंपति की ख़ूब प्रसिद्धि हुई, और अनिच्छा से भी पैसे की आय बहुत पर्याप्त होने लगी। दूर-दूर के रोगी आकर अस्पताल में भर्ती होने लगे। पति-पत्नी, दोनों का एक ही लक्ष्य था। एक की अनुपस्थिति में दूसरा काम सँभाल लेता था। अस्पताल में एक नर्स और एक कंपाउंडर और बढ़ा दिया गया। माजी कभी देवरानी को, कभी उनकी बहू को, कभी जेठानी की बहू को अपने यहाँ बारी-बारी से बुलाकर रखती हैं। इस प्रकार चौके-चूल्हे का काम भी चलता है, साथ ही उन लोगों की सहायता भी हो जाती है। एक बच्चा यहीं पढ़ता है, शेष गाँव के स्कूल में।

अस्पताल में भाँति-भाँति के रोगी आकर भर्ती होते हैं। एक दारोग़ाजी आकर अस्पताल में भर्ती हुए। मंदाग्नि, यकृत की ख़राबी तथा अर्श-रोग से पीड़ित थे। न भूख लगती थी, न दस्त साफ़ होता था। शरीर में रक्त की बेहद कमी थी, निर्बलता भी काफ़ी थी। कई स्थानों के डॉक्टर और वैद्यों की दवा कर चुके थे, और जीवन से एक प्रकार से निराश-से थे। तीन मास में सैकड़ों रुपए की दवाइयाँ खा डालीं। इंजेक्शन लगवाए, जल-वायु परिवर्तन किया, पर लाभ न हुआ। किसी ने डॉक्टर गोपाल का नाम बता दिया, तो आकर इनके अस्पताल में भर्ती हो गए। डॉक्टर गोपाल ने कहा—"आपका रोग पुराना है, अतः देर से आराम होगा। यदि आप धैर्य-पूर्वक डेढ़ महीने तक परहेज़ के साथ दवा करेंगे, तब लाभ होगा।"

दारोग़ाजी आँसू भर लाए, और हाथ जोड़कर कहा—"डॉक्टर साहब! मैं न-जाने कहाँ-कहाँ मारा फिरा, कितने डॉक्टर, वैद्य और हकीमों की दवा की, कितनी ही पेटेंट दवाइयाँ खा डालीं, पर रोग में तनिक भी कमी न हुई। और होती कैसे? मैं ठहरा पुलिस का थानेदार। इस चार-पाँच वर्ष की नौकरी में ही न-जाने कितने अत्याचार कर डाले। उनका फल मैं न भोगूँगा, तो कौन भोगेगा?

नौकरी गई, कमाया हुआ धन गया, अब तन की बारी है कि घुल-घुलकर मरूँ।"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"आपकी नौकरी कैसे गई?"

दारोग़ाजी ने कहा—"यदि अवकाश हो, तो किसी समय बैठकर मेरी कथा भी सुन लें। इससे दो लाभ होंगे—मेरे हृदय का बोझ हल्का हो जायगा, और आपकी सहानुभूति मेरे साथ बढ़ जायगी।"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"इस समय तो रोगियों का काम कर रहा हूँ, शाम को आप आ जायँ, तब मैं आपकी कथा सुनूँगा, और जो सहायता कर सकूँगा, करूँगा।"

दारोग़ाजी ने आँसू भरकर कहा—"डॉक्टर साहब!

वह क़िस्से और होंगे, जिनको सुनकर नींद आती है;
कलेजा थाम लोगे, जब सुनोगे दास्ताँ मेरी।"

डॉक्टर गोपाल ने धीरज बँधाते हुए कहा—"घबराइए नहीं, आप अच्छे हो जायँगे, पर महीना-डेढ़ महीना लगेगा। आप निर्बल भी हैं, अतः यदि किसी को अपने घर से बुला लें, तो सुविधा रहे।"

दारोग़ाजी ने कहा—"मेरी कहानी सुनकर ही आप निश्चय करेंगे कि मैं किसे बुला लूँ।"

[१५]

शाम को, फ़ुरसत के समय, दो-चार व्यक्ति डॉक्टर साहब के पास आ जाते थे। यदि किसी रोगी को कोई विशेष कष्ट हुआ, तो उसे देख लेते, नहीं तो गप-शप होती थी। आज शाम को दारोग़ाजी आ बैठे। डॉक्टर गोपाल ने कहा—"हाँ दारोग़ाजी, अपनी कहानी सुनाइए।"

दारोग़ाजी ने कहा—"देखिए, मैं अपना हृदय खोलकर रख देता हूँ। आप लोग न तो मेरी हँसी उड़ावें, न मेरे ऊपर क्रोध करें, वरन् सहानुभूति दिखावें। मैं जानता हूँ, मैं अपने पापों का फल भोगकर मरूँगा।"

डॉक्टर गोपाल ने आश्वासन देते हुए कहा—"आप ज़रूर अच्छे हो जायँगे, दृढ़ निश्चय रखिए। हम लोग आपकी कथा सुनकर क्रोध न करके सहानुभूति ही प्रदर्शित करेंगे।"

दारोग़ाजी ने अपनी कहानी शुरू की—"मेरा नाम राजेंद्र-सिंह है। मेरे पिता साधारण स्थिति के पुरुष थे। घर पर थोड़ी-सी ज़मींदारी थी, किंतु सीर के खेत ८० बीघा के लगभग हैं जिनसे घर का ख़र्च ख़ूब मज़े से चलता था। मैनपुरी के पास टिंडौली-स्टेशन मेरी जन्म-भूमि है। मैं चौहान ठाकुर हूँ। ठाकुरों में इस ख़ानदान की अच्छी प्रतिष्ठा है। पहले मैंने गाँव में अपर प्राइमरी-दर्जा पास किया, फिर मैनपुरी के हाईस्कूल में भर्ती हो गया। जब मैट्रिक पास कर लिया, तब पिताजी ने कहा—'बेटा! मेरे पास जो कुछ रुपया था, सब ख़र्च हो गया। अब तुम आगे न

पढ़कर नौकरी की चिंता करो।' मेरे मामा फ़ौज में सूबेदार थे। उन्होंने रुपए के साथ नाम भी पैदा किया था। घर की दशा भी अच्छी थी। उन्होंने सिफ़ारिश करके मुझे थानेदारी में भिजवा दिया। पढ़ने में मैं साधारण बुद्धि का था। मैट्रिक सेकंड डिवीज़न में पास किया था। अब जो थानेदारी की ट्रेनिंग में पहुँचा, तो समझ लिया कि थानेदार होने में तो अब कोई संदेह है ही नहीं, अतः दिल में अभिमान की चिड़िया ने फुरफुरी ली। इतने में मेरे ब्याह की चर्चा भी होने लगी। अब तो मेरा अभिमान फल-फूल लाने लगा। अभी तो ट्रेनिंग पाता हूँ, थानेदार होते ही वह ठाट जमाऊँगा कि लोग तमाशा देखेंगे। पिताजी के पास से अब जो भी पत्र पहुँचता, उसमें ब्याह की चर्चा अवश्य होती थी, और उससे मेरे अभिमान का पारा बराबर ऊँचा चढ़ता जाता था। इसी प्रकार के वातावरण में रहते-रहते मन ने अभिमान के वृक्ष को ख़ूब मोटा-ताज़ा बनाया। पुलिस-ट्रेनिंग से छुट्टी पाकर घर आया। अब तो ब्याहवालों का ताँता बँध गया। दूसरे-चौथे कोई-न-कोई महाशय आ बैठते थे। कोई जन्म-पत्र माँगता, कोई दहेज़ की बात पूछता। तात्पर्य यह कि होते-होते मेरे अभिमान में चार चाँद लग गए। न-जाने मैं थानेदारी को क्या समझता था?

"मैंने पिताजी से कह दिया था—'बिना मेरे पूछे ब्याह न करें।' वह बेचारे स्वयं तो मुझसे कुछ न कहते थे, माताजी द्वारा जो कुछ पूछना होता था, पूछते थे। माताजी, एक तो स्नेह के कारण, दूसरे यह कि लड़का सयाना-समझदार है, सारा बोझ मेरे ही सिर पर रख देती थीं। इससे भी मेरे अभिमान को बल मिला। कोई ब्याह तय न हुआ था कि मेरे पास अलीगढ़-ज़िले में नियुक्ति का हुक्म आ गया। अब तो पौ-बारह थे। मैंने जाकर थाने का कार्य प्रारंभ किया। अफ़सर दोयम बनाया गया। बड़े थानेदार, जो

इंचार्ज थे, अनुभवी और सज्जन थे। जो बात मैं पूछता, बड़े प्रेम से बतला देते। मैंने भी मन लगाकर कार्य किया। एक चोरी का पता लगाने में मुझे सफलता मिली। एक क्रांतिकारी का पीछा करके यद्यपि मैं उसे पकड़ न सका, पर उसकी बहुत कुछ गति-विधि ज्ञात हो गई। इससे भी एस्० पी० को मेरी पीठ थपथपाने का अवसर मिला। अब ब्याहवालों ने पिता के पास न जाकर सीधे मेरे पास आना प्रारंभ किया। एक तो विशुद्ध चौहान-वंशी, दूसरे थानेदार। अब मैं किसी अच्छे घर से संबंध करने का स्वप्न देखने लगा। किसी ज़मींदार ने अपने कारिंदे को मेरे पास इसीलिये भेजा। कारिंदा बड़ा चलता-पुर्ज़ा था। जब मैंने पाँच हज़ार नक़द की माँग की, तो वह कहने लगा—'दारोग़ाजी! ब्याह के लिये इतना रुपया ख़र्च करने का अधिकार मालिकों ने मुझे नहीं दिया है। हाँ, कोई रजिस्ट्री ऑफ़िस में चलकर लेना चाहे, तो पाँच नहीं, पंद्रह हज़ार दे सकता हूँ।' इसका अर्थ था कि ब्याह में पाँच हज़ार नहीं दे सकता। हाँ, ऋण चाहो, तो पंद्रह हज़ार तक दे सकता हूँ। एक दूसरे महाशय, जो बड़े आदमी थे, पधारे। ब्याह की चर्चा की। मैंने घुमा-फिराकर पाँच हज़ार नक़द की बात की। उन्होंने अनुनय-विनय द्वारा मुझे समझाने का प्रयत्न किया। पर इस अभिमान के पुतले पर उस नम्रता का कोई प्रभाव पड़ा, तो यही कि जब ऐसे-ऐसे बड़े आदमी मेरा ब्याह करने को आते हैं, तब मेरे महान् होने में कोई संदेह नहीं। बेचारे भद्र पुरुष ने बहुत समझाया, पर जब सीधी उँगलियों से घी निकलता न देखा, तो उसने कहा—'दारोग़ाजी! अभी लड़के हो, दुनिया देखी नहीं है, इसलिये ये हज़ारों की बातें करते हो। घर पर नौ रुपए सात आने की ज़मींदारी है, बाप खेती से गुज़र करता है, आप नौकरी के बल पर ऐंठते हैं, जो बेजड़ की है, आज है, कल नहीं रहेगी।

ऐसी दशा में अपने गरेबान में मुँह डालकर देखिए, तब बात कीजिए।' बात तो उसकी सोलहो आने ठीक थी। मुझे चुभ गई। कोई उत्तर न देकर मैं खिंच गया। वह बेचारे चले गए। इसी प्रकार न-जाने कितने व्यक्ति आए-गए, पर कोई भी सफल-मनोरथ होकर न लौटा।

"एक दिन क्या देखता हूँ कि मामाजी पिताजी के साथ आ पहुँचे। मैंने खान-पान तथा आदरातिथ्य में कोई कोर-कसर न रक्खी। कारण यह था कि मामाजी की बदौलत ही तो यह थानेदारी मिली थी। मामाजी ने सत्कार से प्रसन्न होकर कहा—'बेटा राजेंद्र! तुमसे जो आशा थी, वही तुमने किया। अपने माता-पिता को सुख पहुँचाओ। मैं एक बात के लिये आया हूँ। मेरे एक संबंधी कछवाहे ठाकुर हैं, आगरे के रहनेवाले हैं, किसी स्थानीय बैंक में दो सौ रुपए मासिक पाते हैं, घर पर ज़मींदारी है, आगरे में चार-पाँच दूकानें हैं। इस प्रकार पाँच हज़ार वार्षिक की आय है। खूब भरा-पुरा घर है; पढ़ा-लिखा परिवार है। लड़की हिंदी अपर मिडिल पास तथा ६वें दर्जे में अँगरेज़ी पढ़ती है। सब बातें ठीक हैं। यद्यपि वह बड़े आदमी हैं, पर उन्हें कहीं अच्छा लड़का नहीं मिल रहा है। मैंने उन्हें तुम्हारा नाम बताकर घर का हाल बताया कि घर कमज़ोर ज़रूर है, पर लड़का योग्य है। नौकर हो गया है। लड़की को किसी प्रकार का कष्ट न होगा। अतः वह राज़ी हो गए हैं। उनका लड़का बी० ए० में पढ़ता है। वह दस-पाँच दिन में तुम्हारे पास आवेगा। तत्पश्चात् तुम्हारे पिता ब्याह ठहरा लेंगे।' मामाजी की इस लंबी व्याख्या का मेरे मन पर उस समय क्या प्रभाव पड़ा, यह तो मैं न समझ सका। पर जब मामाजी चले गए, तब मैंने अपने मन को पहले से एक नहीं, दो हाथ ऊँचा पाया। ओह! अब तो पाँच-पाँच हज़ार के मुनाफ़ेदार आने लगे।

अब ताल्लुक़ेदारों के आने में विलंब नहीं है। मामा एक तो फ़ौज के सूबेदार, दूसरे मेरे मामा, तीसरे मेरे उपकारक, उनसे भला क्या कहता ? किंतु जब मामा के लड़के के साथ लड़की का भाई किशोर-सिंह आया, तो मैंने मामाजी से भी बढ़कर उनकी ख़ातिर की। जब मामा के लड़के रामसिंह ने मुझसे एकांत में कहा—'यह लड़की के भाई हैं। आपके ब्याह के लिये आए हैं। पिताजी तथा फूफाजी, दोनो ने सम्मति करके इन्हें भेजा है। आशा है, ब्याह तय हो जायगा।' मेरा मन मतवाले मातंग की भाँति निरंकुश हो उठा। रामसिंह के घर के मेरे ऊपर अनेकों एहसान हैं, उनसे रुपए ठहराने की बात तो क्या कहूँ ? तब कोई अन्य उपाय सोचना चाहिए। मैंने रामसिंह से कहा—'भाई साहब ! मामाजी और पिताजी को सब अधिकार थे, फिर मेरे पास आप क्यों आए ?'

रामसिंह—'आपसे पूछना भी आवश्यक था।'

मैं—'लड़की कैसी है ?'

रामसिंह—'पढ़ी-लिखी, रूपवान्।'

मैं—'बड़े घरों की लड़कियाँ प्रायः.....।'

रामसिंह—'नहीं-नहीं, लड़की बहुत ठीक है।'

मैं—'आपकी दृष्टि में जो ठीक है, संभव है, दूसरे को ठीक न जँचे।'

रामसिंह—'पिताजी, माताजी और मैं देख चुका हूँ।'

मैं—'भाई, दो पैसे की हाँडी ठोक-बजाकर ली जाती है, यह तो जीवन-भर का...।'

रामसिंह—'बात ठीक है, पर हम लोग क्या आपको धोखा देंगे ?'

मैं—'धोखा देने की नहीं, यह तो अपनी पसंद की बात है।'

रामसिंह—'तो फ़ोटो भेज दिया जायगा।'

मैं—'जब असल चीज़ है, तब फ़ोटो के क्या मानी ?'

रामसिंह—'और हम लोग जो विश्वास दिलाते हैं।'

मैं—'यह कोई मुक़दमा तो है नहीं, जिसमें गवाह चाहिए।'

रामसिंह—'भाई साहब ! मान जाइए, सब बात ठीक है।'

मैं—'आपका दृष्टिकोण और है, मेरा और हो सकता है।'

रामसिंह—'बड़ी अच्छी शादी है।'

मैं—'मैं भी मानता हूँ।'

रामसिंह—'फिर यह व्यर्थ का अड़ंगा क्यों ?'

मैं—'अड़ंगा नहीं, वस्तुस्थिति यही है।'

रामसिंह—'यदि लड़की के घरवाले राज़ी न हुए ?'

मैं—'तो एक नहीं, चार और तैयार हैं ?'

रामसिंह—'पर ऐसा एक भी नहीं होगा।'

मैं—'न होगा, आगे हो जायगा।'

रामसिंह—'तो बिना लड़की देखे आप ब्याह न करेंगे ?'

मैं—'अभी तक तो ऐसा ही विचार है।'

रामसिंह—'मैं कहता हूँ, ऐसा ब्याह अब न आएगा।'

मैं—'मैं कहता हूँ, इससे अच्छे-अच्छे लौटा दिए।'

रामसिंह—'तब आपकी मर्ज़ी।'

"रामसिंह किशोरसिंह के साथ लौट गए। दोनो ने अपने-अपने घर सारी चर्चा कह सुनाई। किशोरसिंह के पिता ने कहा—'जब हमारी लड़की में कोई ऐब नहीं, तब दिखला देने में हर्ज ही क्या है ?' रामसिंह को चिट्ठी लिख दी गई कि लड़की दिखाई जा सकेगी। रामसिंह ने मुझे पत्र भेजकर सूचना दी। मैंने बड़े दारोग़ाजी से कहा—'एक दिन को आगरे जाना चाहता हूँ।' उन्होंने कहा—'तारीख़ बतलाइए, फिर वैसा प्रबंध कर दूँ। मैंने तारीख़ की सूचना रामसिंह को दी। उन्होंने आगरे को चिट्ठी भेज दी। निश्चित तिथि

पर हम दोनो आगरा पहुँचे। एक कार लिए किशोरसिंह स्टेशन पर पहले से ही प्रतीक्षा कर रहे थे। घर पहुँचे। ख़ूब आतिथ्य किया गया। थोड़ी देर बाद किशोरसिंह ने पूछा—'आप किस समय लड़की को देखेंगे?' मैंने कहा—'अभी तैयार हूँ।' किशोरसिंह भीतर गए, और थोड़ी देर बाद आकर कहा—'चलिए।' मैं, रामसिंह तथा किशोरसिंह के दो मित्र भीतर गए। आँगन में कुर्सियाँ पड़ी हुई थीं। बीच में एक मेज़ रक्खी थी। मेज़ के आमने-सामने दो कुर्सियाँ पड़ी थी। मेज़ की सामनेवाली कुर्सी पर बैठने का संकेत मुझे मिला। रामसिंह तथा वे दोनो मित्र अगल-बग़ल में बैठ गए। मैं कमरे से 'सरस्वती' मासिक पत्रिका उठा लाया था। वह मेरे हाथ में अब भी थी। मैं उसी पर दृष्टि जमाकर न पढ़ते हुए भी पढ़ने का बहाना-सा करने लगा। इतने में क्या देखता हूँ कि किशोरसिंह अपनी बहन के साथ एक कमरे से बाहर आए। साथ में अल्पाहार (नाश्ता) का सामान था। लड़की ने एक तश्तरी मेरे सामने रखकर शेष लोगों के सामने भी एक-एक तश्तरी रख दी। अब लड़की ने मुझे संबोधन करके कहा—'शुरू कीजिए।' हम लोगों ने नाश्ता किया। जल पिया। किशोरसिंह ने फुर्ती से सब तश्तरियाँ हटवा दीं। अब लड़की एक तश्तरी में पान लेकर आई, और मेरे सामने तश्तरी करके कहा—

'पान हाज़िर हैं, खाइए साहब!
दस्त नाज़ुक बढ़ाइए साहब!'

"मैं झेप गया। हाथ बढ़ाकर पान उठा लिया, इलायची ली, तब लड़की ने दूसरे लोगों के सामने पान पेश किए। जब सब लोग पान खा चुके, तो लड़की मेज़ की दूसरी ओर पड़ी हुई कुर्सी का ऊपरी भाग पकड़कर खड़ी हो गई। मैंने 'सरस्वती' रामसिंह की ओर बढ़ाकर संकेत किया कि देवीजी कुछ पढ़कर सुना दें। रामसिंह ने

'सरस्वती' लड़की को देकर कहा—'बेटी! इसमें से कुछ पढ़कर सुना दो।' लड़की ने 'सरस्वती' खोलकर पढ़ना प्रारंभ किया—'आप भले ही इसे छायावाद कहें, रहस्यवाद के नाम से पुकारें, मैं तो इसे अर्थ-हीन काव्य ही कहूँगा। मैंने अनेक कविताएँ पढ़ी हैं, अनेक काव्य-ग्रंथ देखे हैं, परंतु मैंने सदैव यही पाया है कि जीती-जागती कविता अर्थ-हीन नहीं है। उसमें केवल शब्दों का जाल नहीं है। वह सीधी, साफ़ और सच्ची है। सीधे हृदय में घर करती है। यह दूसरी बात है कि कहीं-कहीं शब्दों या भावों की कठिनता से उसका अर्थ उसी समय समझ में न आवे, पर घंटों सर खपाकर, दिमाग़ का गूदा बाहर निकालकर भी यदि कविजी की कृति समझ में न आए, तो मैं यही कहूँगा कि या तो कविता निरर्थक है, या कविजी। हम बुद्धि-हीन उसे नहीं समझ सकते।'

"'और' कहकर लड़की रुक गई। मैंने कहा—'नहीं।' तब उसने मुझसे पूछा—'अर्थ करूँ?' मैंने कहा—'क्या आवश्यकता है?' लड़की के पास ही किशोरसिंह खड़े थे। उन्होंने रामसिंह को कुछ संकेत किया। रामसिंह ने मुझसे कहा—'कहिए, दारोग़ाजी, क्या विचार हैं?' मैंने बड़ी प्रसन्नता से कहा—'लड़की मुझे बहुत पसंद हैं।' रामसिंह का चेहरा खिल उठा। पर एक क्षण की भी देर न करके लड़की ने कहा—'मगर मुझे आप पसंद नहीं।' ऐं! यह क्या हो गया? मेरे ऊपर इन शब्दों के बदले यदि बम गिर पड़ता, तो मैं पसंद करता। मेरे कानों में इन शब्दों के बदले सीसा गर्म करके डाल दिया जाता, तो अच्छा होता। मैंने अचकचाकर रामसिंह की ओर देखा। वह भी आश्चर्यान्वित थे। किशोरसिंह तथा उनके दोनो आगंतुक मित्र शांत मुख-मुद्रा में थे। लड़की विजयी सेनापति की भाँति 'सरस्वती' की ओर दृष्टि लगाए खड़ी थी। चेहरे पर प्रसन्नता के भाव लक्षित हो रहे थे, किंतु वह उन्हें

दबाने की असफल चेष्टा कर रही थी। एक मिनट बीत गया, और सन्नाटा ज्यों-का-त्यों छाया रहा। तब कमरे के अंदर से आवाज़ आई—'अंतिम दृश्य समाप्त।' यह जले पर नमक लगाना था। मैंने रामसिंह की ओर देखा। वह पहले ही से मेरी ओर देख रहे थे। बाहर चलने का संकेत करते ही हम लोग उठ खड़े हुए। लड़की ने पानों की तश्तरी सामने करके कहा—'पान और खा लीजिए।' अभी थोड़ी देर पहले सम्मान-पूर्वक जो पान खिलाया गया था, उससे इस पान की तुलना करते ही छाती जल उठी! लज्जा से नत-शिर होकर मैंने पान काँपते हाथों उठा लिया। मुँह में रक्खा, मुँह की ख़ुश्की दूर हुई, पर किसी से कुछ बात करने की हिम्मत न हुई। बाहर आकर किशोरसिंह के मित्रों ने मेरा परिचय पूछा। किशोरसिंह ने कहा—'आप चौहान-वंशावतंस हैं। अच्छे-ख़ासे ज़मींदार हैं। शौक़िया थानेदारी कर ली है। अत्यंत नम्र और मधुर स्वभाव के हैं। बड़ों का आदर करना उस स्वभाव की विशेषता है। इष्ट-मित्र और संबंधी आपके बड़े प्रशंसक हैं, क्योंकि आपने सदैव उन लोगों की बात का ध्यान रक्खा है। आप मेरे परम कृपालु मित्र, हितैषी और भावी संबंधी हैं। आपसे देश को, जाति को और हम सबको बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। भगवान् करें, आप उन्नति करके सुपरिंटेंडेंट बनें, और हम सबकी आशाएँ पूर्ण हों।' डॉक्टर साहब! मेरे ऊपर घड़ों पानी पड़ गया। जी चाहता था कि पृथ्वी फट जाय, और मैं उसमें समा जाऊँ। सोच रहा था कि किसी तरह यहाँ से भाग निकलूँ। थानेदार ठहरा, आख़िर सोच-कर रामसिंह से कहा—'भाई साहब! चलना चाहिए।' किशोरसिंह ने कहा—'कहाँ जाइएगा?' मैंने कहा—'बाज़ार में कुछ काम है, उसे करके स्टेशन जाऊँगा।' किशोरसिंह ने कहा—'गाड़ी जाने में ३-४ घंटे की देर है। अभी से स्टेशन जाकर क्या कीजिएगा? दो

घंटे बाद चाय पीकर चलेंगे।' मेरे दिल में कुरेद हो रही थी, किसी तरह भागना ही इष्ट था। किशोरसिंह के मित्र मुझे घूर रहे थे। मैं सोचता था, ये कहते होंगे—'कहो बेटा! कैसी अक्ल दुरुस्त हुई?' मुझे एक-एक क्षण लाख वर्ष के बराबर बीत रहा था। मैंने किशोरसिंह से कहा—'बाज़ार में काम है, इससे जल्दी चलना चाहिए।' रामसिंह मेरी ओर देख-देखकर न-जाने क्या सोच रहे थे। मैंने फिर किशोरसिंह से कहा—'इजाज़त दीजिए।' उन्होंने कहा—'अभी कार लेकर चलता हूँ।' हाय! मुझे कार फूटी आँखों न सुहाती थी। मैं चिड़िया बनकर अकेला इस घर से उड़ जाना चाहता था, पर वह भी नसीब में न था। मैंने मन-ही-मन कहा—

'किससे महरूमिए-क़िस्मत की शिकायत कीजे;
हमने चाहा था कि मर जायँ, सो वह भी न हुआ।'

"जी में एक आती थी, एक जाती थी। मौत माँगता था। यहाँ एक मिनट ठहरना भी मुझे पसंद न था। किशोरसिंह भीतर गए, और बाहर निकलकर ड्राइवर से कहा—'बाज़ार चलेंगे।' सब लोग उठ खड़े हुए। रामसिंह ने मुझसे बिदा माँगी कि मैं अभी न जाऊँगा। मैंने सब कुछ कहा, पर उन्होंने मेरे साथ जाना किसी प्रकार स्वीकार न किया। मेरे दिल में ख़याल आया कि जब रामसिंह किशोरसिंह को साथ लेकर मेरे पास गए थे, तब मैंने उनकी एक भी बात न मानी थी। यदि आज वह मेरी बात नहीं मानते, तो ठीक ही है। मेरा उनके ऊपर कोई अधिकार नहीं। मैं, किशोर-सिंह, उनके दोनो मित्र कार में बैठकर बाज़ार चले। कोतवाली में गया। किसी को जानता तो था नहीं, महज़ टाल-मटूल करनी थी। दीवानजी ने कहा—'आप अपना मतलब बयान कीजिए, यों आप कहते हैं कि मैं अलीगढ़ का थानेदार हूँ, तो मैं क्या करूँ?' किशोर-

सिंह और उनके साथियों के सामने अपना यह अपमान देखकर मैं और भी पानी-पानी हो गया। वहाँ से चलकर बाज़ार आया। कोई काम तो था नहीं, पर कह चुका था कि बाज़ार में काम है, अतः पाँच रुपए के फल ख़रीद लिए। रुपए किशोरसिंह ने दिए। मैंने मना किया, पर वह न माने। जब मैंने कहा—'स्टेशन चलिए।', तो कहा—'आगरे का पेठा और दालमोठ तो लेनी ही चाहिए।' एक दूकान से वह भी लाकर कार में रक्खी। उसके रुपए भी किशोरसिंह ने मना करने पर भी दिए। अब स्टेशन आए। दोनों साथियों ने स्टेशन पर, जब तक गाड़ी नहीं आई, मुझे ख़ूब बनाया। वे तीन थे, और मैं अकेला। तिस पर मेरे ऊपर घड़ों पानी पड़ चुका था। लड़की का इनकार, दीवान का अपमान, सौदा ख़रीदने पर रुपए किशोरसिंह का देना, सभी बातें मेरे प्रतिकूल पक्ष में थीं। शायद दिशा-शूल में आया था, या राहु की दशा अच्छी न थी, या चंद्रमा वक्री था, या न-जाने दुर्भाग्य का सितारा ही ऊँचा था कि ये सारी क्रियाएँ मुझे नीचा दिखाने को हुईं।

"राम-राम करके गाड़ी आई। किशोरसिंह टिकट पहले ही ले आए थे, वह भी इंटर क्लास का। जब मैंने उन्हें पाँच रुपए का नोट देकर कहा—'टिकट।' तब उन्होंने नोट तो न लिया, जेब में हाथ डालकर टिकट निकाला, और मेरे हाथ पर रख दिया। मैंने उन्हें फिर नोट दिया, पर उन्होंने कहा—'रखिए। यह सब आप ही की माया है। हम आपके ही हैं।' जब मैं गाड़ी में बैठा, तो किशोरसिंह ने पाँच रुपए निकालकर भेंट किए। मैंने कहा—'ये रुपए कैसे?' किशोरसिंह ने कहा—'रिश्तेदारी में जाने पर सम्मान-स्वरूप भेंट दी जाती है। फिर आप तो स····· में आए हैं!' आज मेरी क़िस्मत का खोटापन प्रतीत हुआ। पग-पग पर ठोकरें

खा रहा हूँ। ये रुपए मुझे नहीं दिए जा रहे हैं, आख़िरी जूती लगाई जा रही है। फल, मिठाई और टिकट के दाम देना ही मेरे डूब मरने को काफ़ी था, पर अब तो स·····की भेंट। अरे भगवान्! इस जीने से तो मर जाना अच्छा था। मैंने लाख इनकार किया, गाँठ बाँध ली कि रुपए न लूँगा, पर मैं अकेला, वे तीन व्यक्ति। 'हाँ' ने 'नहीं' को दबा लिया, और गाड़ी चलने से पहले ही रुपए मेरी जेब में पड़ गए। जब मैं उन्हें वापस करने को निकालने लगा, तो एक साथी ने ताना दिया—'थानेदार तो सैकड़ों रुपए हज़म कर जाते हैं, आप इन पाँच रुपयों के लिये दस मिनट से ना-ना कर रहे हैं। ना-ना की आदत पड़ जायगी, तो थानेदारी में क्या ख़ाक पैदा करेंगे?' सुनता था, और सहता था। आज खेल की बाज़ी दूसरे पक्ष के हाथ में थी। गाड़ी ने सीटी दी। सब लोगों ने हाथ जोड़कर नमस्ते की, और किशोरसिंह ने पूछा—'अब कब दर्शन होंगे?' मैं शर्म से गड़ गया। उन्होंने फिर वही प्रश्न किया। मैंने कोई उत्तर न दिया, तो उनका साथी बोला—'बताइए, कार कब लाई जाय?' गाड़ी चल दी, और मैं हाथ जोड़कर, गूँगा बनकर उनके मुँह की ओर ताकता रह गया।"

इतना कहकर दारोग़ाजी ने कहा—"डॉक्टर साहब! अब थक गया हूँ, शेष कथा कल सुनाऊँगा।"

डॉक्टर साहब ने कहा—"दारोग़ाजी! सचमुच आपकी कथा बड़ी दिलचस्प है। पर अभी तक की कथा आपके प्रति सहानुभूति उत्पन्न नहीं करती। हाँ, एक रोगी के नाते आप सहानुभूति पाने के पात्र अवश्य हैं। अच्छा, अब अपनी सेवा के लिये किसी संबंधी को बुला लें, तो ठीक हो। मुझे औषधि करने में सुबीता हो, आपको आराम मिले, और नीरोग होने में शीघ्रता हो।"

दारोग़ाजी ने कहा—"जिसके ऐसे व्यवहार हों, उसके पास कोई क्यों खड़ा होगा? आगे की कथा सुनकर आप निर्णय करेंगे, तब ठीक फल निकाल सकेंगे। मैंने पहले ही कहा था कि मुझ पर रोष न करके सहानुभूति प्रदर्शित की जाय।"

[१६]

जागेश्वरी जो प्रैक्टिस करने लगीं, तो उन्हें डॉक्टर गोपाल से भी शीघ्र सफलता मिली। बच्चों के लिये तो वह मसीहा समझी जाने लगीं। मुसलमान स्त्रियों में उनकी आव-भगत और भी अधिक हुई। दो-एक घटनाएँ ऐसी घटीं, जिनका प्रभाव जनता पर ख़ूब पड़ा।

एक मुसलमान सज्जन अपनी स्त्री की बीमारी में डॉक्टर जागेश्वरी को बुलाने आए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने रोगिणी को देखा, और दवा लिख दी। उन मुसलमान सज्जन ने दो रुपए फ़ीस के दिए। पड़ोस की एक स्त्री का बच्चा बीमार था। वह भी डॉक्टर जागेश्वरी को ले गई। एक रुपया उसने भी दिया, और कहा—"मेरे पड़ोस में रहीम की लड़की बीमार है। बहुत ग़रीब होने के कारण वह आपको शायद कुछ न दे सकें।"

डॉक्टर जागेश्वरी ने कहा—"तब मैं उनकी बच्ची को ज़रूर देखूँगी।"

इतना कहकर उस बच्ची को देखने गईं। सारा घर ग़रीबी की साक्षी दे रहा था। डॉक्टर जागेश्वरी ने बड़े प्यार से बच्ची को देखा, ख़ूब जाँच की, और दवा लिख दी। बच्ची की मा ने एक अठन्नी काँपते हाथों से पेश की। जागेश्वरी ने अभी फ़ीस में मिले तीनो रुपए निकालकर उसे दे दिए, और कहा—"प्यारी बहन! हम ख़ून चूसनेवाले डॉक्टर नहीं हैं, हम तो ख़ून देनेवाले डॉक्टर हैं। आपकी बच्ची को हमारे अस्पताल से दवा मुफ़्त मिलेगी, और इन रुपयों से अपने और बच्ची के लिये खाने का सामान मँगवा लेना। बच्ची आराम हो जायगी।"

बात तो साधारण थी, पर दोपहर तक रहीम की स्त्री ने जो मिला, उसी से यह सुसंवाद कह सुनाया।

मुसलमानी मुहल्ले में हकीम अनवार साहब आते थे। चार नख़रे दिखाते थे, कस के फ़ीस लेते थे, और दवा के दाम अलग। पर आज से हवा बदल गई। छोटे-बड़े, सबकी ज़बान पर एक ही बात थी—"डॉक्टर जागेश्वरी सच्ची डॉक्टर हैं। बच्चों की वह मसीहा हैं। वह न हिंदू हैं, न मुसलमान। वह तो ख़ुदा की भेजी हुई दूत हैं, जो हम लोगों के इलाज के लिये देवी की शक्ल में हमारे सामने आई हैं।"

आज से हकीम अनवार साहब की मानता कम हो गई, और डॉक्टर जागेश्वरी के यहाँ मुसलमानों की भीड़ टूट पड़ी।

एक दिन डॉक्टर जागेश्वरी किसी रोगी को देखकर लौट रही थीं कि एक चमारिन अपने बच्चे को चिथड़ों में लपेटे ताँगे के सामने आकर खड़ी हो गई। डॉक्टर जागेश्वरी ने बच्चे को देखा, और कहा—"बच्चा बहुत मैला है, इसे साबुन से नहलाओ।"

चमारिन ने आँसू भरकर कहा—"न खाने को है, न पहनने को। रात को इसी बच्चे को छाती से चिपटाकर सो रहती हूँ, फिर साबुन के लिये पैसे कहाँ से लाऊँ?"

जागेश्वरी ने चमारिन को मय बच्चे के अपने साथ ताँगे में बिठा लिया। दस-बीस आदमी इधर-उधर के इकट्ठे होकर यह तमाशा देख रहे थे। सबने कहा—"डॉक्टर जागेश्वरी सचमुच देवी हैं।"

अस्पताल पहुँचकर डॉक्टर जागेश्वरी ने साबुन देकर बच्चे को नहलवाया, अँगौछा देकर उसकी देह साफ़ कराई, और वह अँगौछा उसी को दे दिया। एक चद्दर उसे ओढ़ने को दी, और बच्चे को दवा देकर उसे बिदा किया।

चमारिन ने बाज़ार में ये सब बातें कह सुनाईं। मनुष्य के कहने का प्रभाव कम और करने का बहुत पड़ता है। बिना घोषणा के सच्ची घोषणा हो गई। एक तो लोग डॉक्टर गोपाल के व्यवहार से संतुष्ट थे ही, अब डॉक्टर जागेश्वरी के व्यवहार से लोगों को विवश होकर कहना पड़ा—"डॉक्टर जागेश्वरी डॉक्टर गोपाल से भी आगे हैं।"

एक दिन चौबीस-पचीस वर्ष का एक युवक डॉक्टर जागेश्वरी के पास आकर कहने लगा—"मेरी स्त्री बीमार है। उसकी गोद में चार महीने का बच्चा है। मेरी मा बहू से अप्रसन्न हैं, अतः दवा-दारू का प्रबंध नहीं करतीं। इस असावधानी में बच्चा और उसकी मा, दोनो ख़तरे में हैं। मैं लज्जा के कारण कुछ कह नहीं सकता। मैं मा का इकलौता बेटा हूँ। बाप मेरी मा के डर से कुछ कर नहीं सकते। मा-बाप मुझे प्यार करते हैं, किंतु बहू को नहीं।"

डॉक्टर जागेश्वरी ने कहा—"तब आप क्या चाहते हैं?"

युवक ने कहा—"आप मेरे घर चली जायँ, और रोगिणी को देखकर दवा दे दें। मेरी मा से यह न कहें कि मैं आपको बुला लाया हूँ।"

डॉक्टर जागेश्वरी को उसी मुहल्ले में दूसरा रोगी देखना था। पता पूछकर उस युवक के घर पहुँचीं। "माजी, नमस्ते।" कहकर पूछा—"क्या आपकी बहू बीमार है?"

सास ने अलसाए स्वर में कहा—"हाँ, बीमार है।"

डॉक्टर जागेश्वरी ने कहा—"क्या मैं उसे देख सकती हूँ?"

सास ने पूछा—"आप कौन हैं?"

डॉक्टर जागेश्वरी ने कहा—"मैं डॉक्टर हूँ।"

सास ने एक कोठरी की ओर संकेत करके कहा—"इसमें है।"

डॉक्टर जागेश्वरी ने बहू की दशा देखी। गंदी कोठरी में, मैले

बिस्तर पर बहू चाँद के टुकड़े के साथ उदासी को धारण किए लेटी हुई है। डॉक्टर जागेश्वरी ने कहा—"माजी! बहू को साफ़-सुथरी जगह में रखिए, ओढ़ना-बिछौना ठीक से दीजिए, तो जल्द आराम हो। बच्चा गोद में है, अतः उसकी देख-रेख की विशेष ज़रूरत है। क्या मैं आशा करूँ कि आप उसे ठीक से रक्खेंगी?"

सास ने कहा—"बहू अपने मन की है, मेरे मन की नहीं। इसके बाप ने ब्याह-गौना तो अच्छा कर दिया, पर अब की बार जो इसकी बिदा होकर आई, तो पकवानों के मटके लेकर नहीं आई। बताइए, मैं अपने भाई-बंदों में क्या बाँटूँ?"

डॉक्टर जागेश्वरी ने कहा—"क्यों बहू, क्या बात है?"

बहू ने कहा—"सासजी ठीक कहती हैं। मेरे माता-पिता ग़रीब हैं। वे मेरे ब्याह में क़र्ज़दार हो गए, उसे अभी नहीं चुका पाया। इधर मेरा भाई नवें दर्जे में पढ़ता है, ग़रीबी का घर, अगर पकवानों के मटके नहीं भेज सका, तो सासजी क्षमा करें। फिर, मेरे माता-पिता की ग़रीबी के अपराध का दंड मुझे क्यों दिया जाय? मैंने आज तक घर के काम में सुस्ती नहीं की, सासजी से एक बात नहीं कही, इस पर भी यह अप्रसन्न हैं, तो बतलाइए, मैं क्या करूँ?"

डॉक्टर जागेश्वरी ने सास से कहा—"माजी! यदि वे ग़रीब हैं, तो उनकी सहायता कीजिए, न कि उन्हें और चूसिए। संबंधी तो इसीलिये होते हैं कि समय पर काम आवें। वे भी क्या जानेंगे कि हमारा कोई संबंधी इस योग्य था कि हमारी सहायता कर सका। फिर, जो प्रसन्नता से दे सकें, लीजिए। कुछ गेहूँ तो बेचे नहीं कि उनका मूल्य पाई-पाई वसूल कर लें। यह बतलाइए कि आप बहू से क्यों अप्रसन्न हैं? इसने आपका कुछ नहीं बिगाड़ा। कभी जवाब तो नहीं दिया?"

सास ने कहा—"इसके मा-बाप ग़रीब हैं, तो क्या हम अपना

हक़ छोड़ देंगे ? फिर, मा-बाप तो हमारे सामने हैं नहीं, इससे न कहें, तो किस से कहें ?"

डॉक्टर जागेश्वरी ने बड़ी नम्रता से कहा—"माजी, आपका अकेला लड़का, अकेली बहू, जिसकी गोद में चाँद-सा पोता, इसे आप देखती हैं, या इसके मा-बाप के पकवान न भेजने को देखती हैं ?"

अब बहू को कुछ कहने का साहस हुआ। उसने कहा—"श्रीमतीजी ! मैं मर जाऊँ, कोई चिंता नहीं; मेरी कोई फ़िक्र न की जाय, न दवा-दारू की जाय, न और कुछ, पर इस कलेजे के टुकड़े को दुखी देखकर घुली जाती हूँ। यह तो मेरे मायके का नहीं है ? यह तो इनकी संपत्ति है, इसे पालें, न कि मेरे और मेरे मा-बाप के अपराधों के कारण यह अबोध शिशु भी एक-एक छटाँक दूध के लिये तरसता रहे। मैं बुरी सही, पर इसने किसी का क्या बिगाड़ा है, जो इसे छटाँक-भर दूध भी नहीं मिलता ?"

सास ने कहा—"जब बहू मेरे मन की नहीं, तब बच्चे को भी मैं प्यार नहीं करती। साँप का बच्चा तो साँप ही होता है।"

डॉ० जागेश्वरी ने कहा—"यह बच्चा तो आपके बच्चे का बच्चा है। यह साँप का बच्चा कैसे हो गया ? इसमें तो आपका ही रक्त-मांस है। फिर, मूल से ब्याज प्यारा होता है। आपको तो इसे अपने बच्चे से भी अधिक प्यार करना चाहिए। यदि आप यह सोचती हों कि यह बहू मर जाय, तो दूसरी अमीर घर की लड़की आ जायगी, तो याद रखिए, इसने घर का काम किया, और आपको कभी उत्तर नहीं दिया। अमीर घर की लड़की काम न करेगी, और शायद आपकी बात भी सहन न करे, तब आप इस बहू को याद करके पश्चात्ताप करेंगी। इसलिये इस बहू की दवा-दारू ठीक ढंग से कीजिए, और इस बच्चे का ठीक विधि से लालन-पालन कीजिए।

यह आपके वंश का भूषण होगा। पहले ही गर्भ में लड़का हुआ, यही लाखों की संपत्ति बहू ने पैदा की। फिर, आपके घर में क्या नहीं है, जिसकी आप दूसरों से आशा करती हैं?"

सास ने कहा—"यह मेरे मन की नहीं है, इसी से सारी बात बिगड़ रही है।"

डॉक्टर जागेश्वरी ने कहा—"क्या बात है, जो मन की नहीं है। घर का सारा काम करती है, आपको कभी जवाब नहीं देती, फिर अब आप क्या चाहती हैं? चलकर मेरी सास को देखिए कि मेरे ऊपर निछावर हुई जाती हैं। उन्हें अपने लड़के की उतनी चिंता नहीं है, जितनी मेरी। मैं जब तक न जाऊँगी, वह खाना न खायँगी। मेरा उदास मुँह देखकर पुचकारती हैं, कारण पूछती हैं। यदि मैं बीमार हो जाऊँ, तो वह मेरे लिये कुछ न उठा रक्खें। एक आप हैं कि जिस बहू की गोद में चाँद-सा बच्चा खेलता है, उसे आप इस लापरवाही से रखती हैं। आप वृद्ध हैं, मैं तो आपके सामने लड़की हूँ, आपको क्या समझाऊँ, पर आप स्वयं ही अपने घर को स्वर्ग बनाइए। पड़ोसी हँसते होंगे कि खूब सत्यदेव की मा और उसकी पत्नी में झगड़ा रहता है। दूसरों को न हँसाइए, बल्कि उनके सामने ऐसा नमूना पेश कीजिए कि वे हँसने के बदले कुछ शिक्षा ग्रहण करें। इस गंदी कोठरी और मैले बिस्तर पर बहू को लेटते देख आपको बुरा नहीं लगता? पोते को गोद में लेकर क्या तुम्हारी छाती ठंढी नहीं होती? लोग बच्चे के लिये क्या-क्या नहीं करते? और आप घर आए देवता की पूजा नहीं करतीं? क्या मैं आशा करूँ कि आप आज से बहू को प्यार करेंगी?"

सास कुछ उत्तर न दे सकी, और जागेश्वरी का मुँह ताकने लगी। ठीक समय समझकर जागेश्वरी ने बहू से कहा—"बहन! सासजी के पैर छुओ, और विना किए अपराधों की भी क्षमा माँगो।"

बहू ने उठकर सास के पैरों पर सिर रक्खा, और क्षमा माँगी। सास ने बहू की पीठ पर हाथ रखकर आशीष दी।

दूसरे दिन जाकर डॉक्टर जागेश्वरी ने देखा कि रोगिणी की दशा बहुत अच्छी है। सचमुच उसे कोई रोग न था, सास के व्यवहार से कुढ़कर ही उसे ज्वर आने लगा था। आज साफ़-सुथरी जगह पर, उजले बिछौने पर बहू लेटी थी। बच्चा अपनी दादी की गोद में था। डॉक्टर जागेश्वरी ने दोनों को धन्यवाद दिया, और कहा—"मा! मैं तो ठहरी डॉक्टर, रोगी देखा, और दवा दी। मुझे इस सास-बहू के झगड़े से क्या मतलब? पर मैं तो आप सबको अपना ही समझती हूँ। वैसे ही भारत की दशा बुरी है, घर-घर फूट फैली है। हिंदू-मुसलिम, छूत-अछूत, ग़रीब-अमीर, ब्राह्मण-अब्राह्मण, न-जाने कितने भेद हमारे संकट को और बढ़ानेवाले हैं। ग़ुलामी की ज़ंजीर पाँवों में पड़ी है। इस तरह घर-घर लड़ाई होगी, तो कैसे भारत का उद्धार होगा?"

सास ने हँसकर कहा—"देवी, सत्य कहती हो, तुम्हें मेरे झगड़ों से मतलब, पर तुम अपने कर्तव्य का पालन करती हो। आज से आगे अब न सुनोगी कि मेरे घर में झगड़ा हुआ।"

डॉक्टर जागेश्वरी रोगी को देखकर चलने लगीं, तो सास ने कहा—"ठहरिए।"

एक तश्तरी में मिठाई लाकर खिलाई, और पाँच रुपए भेंट दिए। चलते समय डॉक्टर जागेश्वरी ने कहा—"माजी! एक प्रार्थना और है। इस बहू का छोटा भाई यहीं हाईस्कूल में पढ़ता है, बोर्डिंग में रहता है। यदि उचित समझें, तो उसे बुलाकर अपने घर रक्खें। संबंधियों को सहारा होगा, आपको मुफ़्त में पढ़ा-लिखा नौकर मिल जायगा, बहू की आत्मा को बड़ा संतोष होगा।"

सास ने कहा—"बहुत अच्छा।"

दूसरे ही दिन सत्यदेव की मा ने सत्यदेव के साले दीनानाथ को बुला लिया। दीनानाथ बड़ी मुश्किल से घर पर रहने को राज़ी हुआ। संयोग की बात कि कुछ दिन बाद सासजी बीमार हुईं। सत्यदेव दौड़कर डॉक्टर जागेश्वरी को बुला लाए। जागेश्वरी ने देखा, बहू और बच्चा, दोनो स्वस्थ हैं, पर सासजी मलेरिया-ज्वर से पीड़ित हैं। सासजी की जाँच करके पूछा—"बहू सेवा करती है?"

सास ने कहा—"बहू और उसका भाई दीनानाथ, दोनो ही ख़ूब सेवा करते हैं। बहू तो चारपाई के पास से नहीं हटती।"

जागेश्वरी ने कहा—"यह वही बहू है, जिसे आप बेमन की कहती थीं।"

सास ने कहा—"देवी, तुमको अनेक धन्यवाद!"

[१७]

दूसरे दिन दारोग़ाजी ने अपनी कथा यों कहनी प्रारंभ की—

"वे लोग चले गए, और मैं रेल में अपने किए पर पश्चात्ताप करने लगा। हाय! मैंने मामाजी का कहना न माना, जिनकी बदौलत आज थानेदारी की कुर्सी पर बैठा हूँ। उन माता-पिता की अवहेलना की, जिन्होंने स्वयं कष्ट उठाकर, मुझे सुख में रखकर पढ़ाया। रामसिंह के साथ लड़की का भाई गया, किस नम्रता से बात की, पर मुझे तो यह फटकार सहनी थी। लड़की ने साफ़ कह दिया—'आप मुझे पसंद नहीं।' इस वाक्य को सुनकर धरती फट जाती, और मैं उसमें समा जाता, तो ठीक होता। इसी प्रकार पछताते हुए अलीगढ़ पहुँचा। थाने पहुँचकर काम में जुट गया, पर कभी-कभी 'आप मुझे पसंद नहीं।'वाली घटना दिल को मसोस देती थी। इस घटना का समाचार मामाजी ने पत्र द्वारा मेरे पिता को दिया। पिता पर वज्राघात हुआ। उन्होंने इसके परिहार का यह उपाय सोचा कि शीघ्र-से-शीघ्र राजेंद्र का ब्याह कर लिया जाय। खिमसेपुर—ज़िला फ़र्रुख़ाबाद—उस पक्की सड़क पर है, जो फ़र्रुख़ाबाद से इटावे को जाती है। उसके निवासी कुँवर माधोसिंह तहसील फ़र्रुख़ाबाद में तहसीलदार के पेशकार हैं। वेतन के अतिरिक्त सौ रुपया मासिक ऊपर से मिल जाता है। राठौर-वंश के हैं। वह मेरे पिता के पास अपनी कन्या के लिये कई बार आए थे, पर यहाँ तो कंपिटीशन हो रहा था। फिर, वह जानते थे कि मेरे मामा के सामने

किसी की दाल न गलेगी; अतः मन मारकर बैठ रहे। ज्यों ही उन्हें ख़बर लगी कि मामा का बताया आगरेवाला ब्याह न होगा, तुरंत ही पिताजी के पास मेरे घर आए। पिताजी उन्हें लेकर मेरे पास आए। एकांत में मुझसे कहा—'बेटा! लड़कपन छोड़ दो, यह ब्याह कर लो। बराबर के भाई हैं, लड़की पढ़ी-लिखी चौदह वर्ष की है, रुपया भी देंगे। पर रुपया तो मुझ ग़रीब को चाहिए, न कि तुम्हें। तुम्हारे सामने तो नित्य लक्ष्मी का नृत्य होगा। अतः मेरा कहना मानकर यह ब्याह कर लो।' पिछले पश्चात्ताप की झलक अभी हृदय पर थी, अतः बिना कुछ सोचे-विचारे पिताजी से हाँ कर दी। पिताजी के हर्ष का ठिकाना न था।

"ब्याह हो गया। कुँवर माधोसिंह ने दो हज़ार रुपए दिए। पिताजी रुपए की अपेक्षा उनके सद्व्यवहार से बहुत प्रसन्न रहे। बहू बिदा होकर घर आई। स्त्रियों की सम्मति हुई कि लड़की छोटी है, अतः पति-पत्नी को एकत्र न होने दिया जाय। मैंने बहुत चेष्टा की, पर सफल न हो सका। विवश होकर मैंने अपनी पत्नी को बुलाया, और चाहा कि कुछ बात करूँ, पर उसने किसी बात का उत्तर न दिया। मैं ठहरा ज़िद्दी और थानेदार। नीति में लिखा है—

'यौवनं धनसंपत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता;
एकैकमप्यनर्थाय, किमु यत्र चतुष्टयम्।'

"यौवन, धन, प्रभुत्व और अज्ञान में से एक-एक ही अनर्थ कर सकता है। यदि चारों एकत्र हों, तो क्या कहना?

"मुझमें चारों एकत्र थे। और, थानेदारी का नशा सबके ऊपर था। अब मैं आगरेवाले पश्चात्ताप को भूल गया, और पत्नी पर सारा दोष मढ़कर, क्रुद्ध होकर नौकरी पर चला गया। मेरी माता को मेरे व्यवहार से विशेष दुःख होता था, पर पिताजी भीतर से चाहे

जो कुछ अनुभव करते हों, ऊपर से मेरे व्यवहार-जनित दुःख को पी जाते थे। अगहन के महीने में मुझे सूचना मिली—'द्विरागमन के लिये द्वादशी की शुभ सायत है। नवमी को टिंडौली घर पर आ जाना। दशमी को खिमलेपुर चलेंगे।' मैंने कोई उत्तर न दिया। आठवें दिन दूसरा पत्र उसी मज़मून का आया। मैंने लिख दिया—'छुट्टी नहीं है।' बेचारे पिताजी भागे आए, और समझा-बुझाकर मुझे राज़ी किया। द्विरागमन हो आया। अब मैं बहू को साथ लेकर नौकरी पर जाना चाहता था। मा की इच्छा थी कि आठ-दस दिन बहू यहाँ रह ले, तब नौकरी पर जाय। मैंने मा का कहना न माना। बहू को लेकर अलीगढ़ पहुँचा था कि हुक्म मिला—'तुम्हारा तबादिला ज़िला बाँदा को कर दिया गया।' अब क्या हो? जिन पाँवों गया था, उन्हीं पाँवों लौट आया, और श्रीमतीजी को मा के पास कर दिया। मैंने इस बीच, शान से समझिए या क्रोध के कारण, श्रीमतीजी से बात तक न की।

"बाँदा में चार्ज लेकर मकान ठीक किया, फिर श्रीमतीजी को ले गया। श्रीमतीजी अन्य लड़कियों की भाँति अनेकों अरमान दिल में लिए होंगी, पर मैं एक ही अरमान रखता था ब्याह में मुझसे न बोलने का भरपूर बदला। बाँदा पहुँचकर रँगरेलियाँ तो एक कोने में रक्खी रह गईं। बात-बात पर बिगड़ना, गालियाँ देना, और साधारण मार-पीट का अध्याय खुल गया। कभी खाना फेंक देता, कभी जल का गिलास उन्हीं के ऊपर डाल देता। सुख इतना ही था कि कहारी चौका-बर्तन कर जाती थी। कभी-कभी कहारी के सामने ही मैंने उन सुंदर शब्दों (गालियों) का प्रयोग किया, जिन्हें पुलिस के थानेदारों को छोड़कर कोई भला आदमी मुँह से न निकालेगा। एक बार का व्यवहार आगे के लिये भूमिका बन जाता है। धीरे-धीरे मार-पीट साधारण बात बन गई। दूसरे-चौथे लात,

जूता और थप्पड़ से सत्कार करने लगा। श्रीमतीजी ने चुपके अपने पिता को सारा विवरण लिख भेजा। मुझपे इतना सहमी हुई थीं कि कोई बात कहने का साहस न होता था। मुझे प्रेम के स्थान पर घृणा ने घेर लिया था। श्रीमतीजी की सूरत से नफ़रत थी। शायद ही कभी मैंने प्रेम-दृष्टि से उनको देखा हो। मेरे ससुर कुँवर माधोसिंहजी आए, और लड़की को ले जाने की बात कही। मैंने पहले सोचा कि जाने दो, आफ़त टले, पर थानेदारी की अकड़ ने कहलाया—'मुझे रोटी का कष्ट होगा।' ससुरजी ने कहा—'कुछ दिन के लिये मा को बुला लो। मेरी बेटी का मन भी दो-चार महीने में बहल जायगा, और आप भी निश्चिंत होकर काम कर सकेंगे। फिर थोड़े दिन बाद बुला लेना।' मैंने भेज दिया। अकेला रहा। पहले तो खाने पीने का कष्ट रहा, पर पीछे अभ्यास पड़ गया।

"थाने के काम में मैं अब होशियार हो गया था, अतः रिश्वत के हथकंडे भी जान गया था। अकेला था, इसलिये ख़र्च कम होता। जहाँ जाता, बड़ा सत्कार किया जाता। जो रुपया बचता, सेविंग बैंक में जमा कर देता। पाँच-सात महीने बाद श्रीमतीजी को बुला लाया। फिर भी—'वही रफ़्तार बेढंगी, जो पहले थी, वह अब भी है।' बाला मुआमिला हो गया।

"एक दिन खाना बनाया, नमक डालना भूल गईं। ऐसा गुरुतर अपराध भला एक थानेदार कैसे क्षमा कर सकता था? चौके में पड़ी हुई ईंधन की लकड़ी उठाकर चार-पाँच कसकर जमा दीं, और बाहर निकल आया। बाज़ार से मँगाकर कुछ खा लिया।"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"दुबारा नमक क्यों न डाल लिया?"

दारोग़ाजी ने कहा—"डॉक्टर साहब! जब आप-जैसी शांत बुद्धि होती, तब न; वहाँ तो थानेदारी का अभिमान बड़े ज़ोरों से उबल रहा था। अब तो नित्य ही गाली-गलौज और मार-पीट की नौबत

आने लगी। एक दिन जेठ की दोपहरी थी। लू चल रही थी। मैं एक बजे दोपहर को बाहर से घर आया। घोड़े से उतर, हंटर हाथ में लिए घर गया। श्रीमतीजी दाल बना चुकी थीं, आटा गुँधा हुआ रक्खा था कि जब मैं आऊँ, तब ताज़ी-ताज़ी रोटी बना दी जाय। मेरे आने में देर हुई। श्रीमतीजी चौके के बाहर, दीवार का सहारा लेकर, बैठ गईं। गर्मी के दिन, दोपहर की लू, नींद आ गई। जब मैंने घर के भीतर पहुँचकर उन्हें यों सोते देखा, तो आव गिना न ताव, तड़ातड़ हंटर जमाना प्रारंभ किया। पाँच-सात हाथों में ही सारा शरीर उधेड़ दिया, पर मारना बंद न किया। उठकर मेरे पैर पकड़ने दौड़ीं, तो बूट की ऐसी ठोकर जमाई कि उसी ठौर पर गिर पड़ीं। मैंने दो-तीन हंटर और लगाए, और बाहर चला आया। थाने में आकर काम करने लगा, और भूल गया कि घर पर कुछ कर आया हूँ।"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"मनुष्य नहीं, नर-पिशाच हो। अकारण इतना क्रोध और ऐसा दंड! तभी तुम इन बीमारियों को अपने इन उद्दंड कर्मों के फल-स्वरूप भोग रहे हो।"

दारोग़ाजी ने कहा—"मैं पहले ही प्रार्थना कर चुका हूँ कि मैं रोष का पात्र न होकर सहानुभूति का पात्र हूँ। अब मैं समझता हूँ कि मैंने ठीक नहीं किया। उस समय यदि मुझसे कोई कहता कि आप ठीक नहीं कर रहे हैं, तो मैं दफ़ा ११० में चालान कर देता।

"शाम को पाँच बजे चौका-बर्तन करने कहारी घर पहुँची, तो क्या देखती है कि मालकिन आँगन में बेहोश पड़ी हैं। सारा शरीर ख़ून से लथपथ है। ज्वर चढ़ा हुआ है। ऐसी लू में चार घंटे ख़ून में लथपथ पड़े रहना ही आधी मौत थी। कहारी ने उठाकर बिठाया। आँख खोलकर देखा, पर फिर सहारा हटते ही आँगन में लोट-पोट हो गईं। कहारी बिना चौका-बर्तन किए लौट गई, और उसने

बड़े दारोग़ाजी के घर जाकर सारी कथा वर्णन कर दी। उन्होंने बड़े दारोग़ाजी को बुलाकर सारा हाल कह सुनाया। बड़े दारोग़ाजी ने मुझे बुलाया, और एकांत में समझाकर कहा—'यह लड़कपन अच्छा नहीं। एक तो कोई दूसरी औरत तुम्हारे घर में नहीं, फिर अकेली औरत को इस तरह मारना कि दोपहरी-भर आँगन में इस हालत में ख़ून से लथपथ पड़ी रहे कि उठ न सके। मैंने सुना है, उसकी दशा बहुत ख़राब है। बेरहम! अगर हाथ साफ़ करना था, तो चोर-डाकू और बदमाश क्या मर गए थे?' मैं नीचा सिर किए सब कुछ सुन रहा था। वह एक बड़े-बूढ़े की तरह फटकार रहे थे। बोले—'अगर आज एस्० पी० को लिख दूँ, तो जानते हो, क्या हो? एक तो थानेदारी में वैसे ही दुनिया ऊपर से अनुकूल, पर भीतर से प्रतिकूल होती है, इस पर भी अगर हम लोग अपने घर में ही तेग़-बहादुरी दिखलाने लगें, तो चार दिन भी थानेदारी न चले।' मैंने कोई उत्तर न दिया। बड़े दारोग़ाजी ने डॉक्टर को बुलाकर मरहम-पट्टी करवाई। डॉक्टर ने बतलाया—'हालत बहुत ख़राब है। मौत भी हो सकती है। सावधानी से इलाज हो, तो शायद बच जाय।' कहारी को रात-दिन उनके पास रहने का हुक्म देकर एक आदमी को दरवाज़े पर तैनात कर दिया। कोई पंद्रह दिन में श्रीमतीजी चलने-फिरने योग्य हुईं। दारोग़ाजी ने मेरे ससुर को चिट्ठी लिखकर बुलाया, और मैंने बिना नानु-नच के स्त्री को उनके साथ भेज दिया। चलते समय ससुरजी कह गए—'बेटा राजेंद्र! मैं ऐसा जानता, तो कभी अपनी कन्या तुम्हारे हाथों न सौंपता।' मैं कुर्सी पर बैठा हुआ मूछों पर ताव दे रहा था। ससुर की आकृति से पता चलता था कि बहुत रुष्ट हैं।

"अब मैं अकेला रह गया। किसी सिपाही से भोजन बनवा लेता। बाहर जाता, तो बना-बनाया खाना तैयार। किसी के डाका पड़

गया हो, ख़ून हो गया हो, कैसी ही विपत्ति आई हो, पर दारोग़ाजी के लिये छप्पन प्रकार के व्यंजनों का आयोजन किया जायगा। तभी तो लोग कहते हैं—'पुलिसवाले लाश पर बैठकर जनता का ख़ून पीते हैं।' मैंने भी ख़ूब रिश्वत ली, जनता की छाती पर मूँग दलकर ख़ूब मोटा हुआ। कभी-कभी तो दोनों पार्टियों से रिश्वत लेता था, और ईश्वर नाम की किसी वस्तु से डरना तो दूर, वरन् यह सोचता था कि यदि ईश्वर मिल जाय, तो उसे किसी दफ़ा में चालान करके कुछ दिनों के लिये बड़े घर भेज दूँ। घर पर मेरी मा मर गई, पर मैं न गया। पिताजी डर के कारण मेरे पास न आते थे। इधर बहू की दशा सुन पिताजी बहुत रुष्ट थे। अब मेरा न कोई संबंधी था, न रिश्तेदार। मामाजी, ससुरजी, पिताजी, सभी रुष्ट थे। कोई मेरा मुँह न देखना चाहता था। मैं भी सबसे अलग रहने में ही प्रसन्न था। एक दिन ऑफ़िस की मार्फ़त मेरे पास एक सम्मन आया, तो मालूम हुआ कि मेरी स्त्री ने रोटी-कपड़ा पाने के लिये अदालत में प्रार्थना की है। सम्मन पढ़कर नियत तिथि पर मैं न गया, और टालमटूल कर दी। दुबारा फिर सम्मन आया, तो पुलिस के जौहर दिखाए, और न गया। तीसरी बार सम्मन पर एस्० पी० ने लिख दिया—'अदालत की आज्ञा का पालन न होने पर मुअत्तिल कर दिए जाओगे।' विवश होकर जाना पड़ा। वकीलों से सम्मति लेकर भाँति-भाँति के उत्तर सोचे गए—औरत दुराचारिणी है, अपने गाँव के एक व्यक्ति के साथ अनुचित संबंध रखने के कारण, पति के पास न रहकर, मायके चली जाती है। ऐसी दशा में भोजन-वस्त्र की ज़िम्मेदारी पति पर न होनी चाहिए।

"अदालत में पुकार हुई। श्रीमतीजी, उनके पिता और भाई, वकील के साथ, अदालत में उपस्थित थे। मैं भी एक ओर खड़ा था। अदालत ने पूछा—'रामदुलारी किसका नाम है?' वकील ने

श्रीमतीजी की ओर हाथ से संकेत कर दिया। अदालत ने पूछा—'तुमने अपने पति के ख़िलाफ़ यह अर्ज़ी दी है कि खाने-कपड़े के लिये माहवारी बाँध दिया जाय?' रामदुलारी ने कोई उत्तर नहीं दिया। वकील साहब ने कहा—'कहो बेटी, हाँ, अर्ज़ी दी है।' पर श्रीमती ने फिर कोई उत्तर न दिया। अदालत ने वकील साहब से कहा—'क्या बात है, रामदुलारी कोई उत्तर नहीं देती?' वकील ने कहा—'पिता और पति के सामने लज्जा लगती है।' अदालत ने कहा—'सिर्फ़ 'हाँ' कह दो।', पर श्रीमतीजी ने कुछ न कहा। तब अदालत ने रामदुलारी को संबोधन करके कहा—'तुम अपने पति राजेंद्रसिंह से अपने खाने और कपड़े के लिये माहवारी ख़र्च चाहती हो?' श्रीमतीजी ने बड़े धीमे स्वर से कहा—'नहीं चाहती।' अदालत ने अर्ज़ी ख़ारिज कर दी। मैं थानेदारी शान से अकड़ता हुआ बाहर निकला, और काम पर लौट आया। एक ख़ुफ़िया हुक्मनामा मेरे नाम था। एस्० पी० ने मुझे तुरंत बुलाया था। उनके पास गया। उन्होंने एक शिकायती अर्ज़ी, जिसमें मेरे रिश्वत लेने की बात लिखी थी, मेरे सामने रख दी। मैंने उसे पढ़ा, और कह दिया—'हुज़ूर, बिलकुल झूठ है।' एस्० पी० ने कहा—'अगर तहक़ीक़ात में सच निकली, तो मुक़दमा चलेगा।' मैंने कहा—'ज़रूर।' मैं लौट आया, और अपने मुआमिलेवाले को बुलाया, पर वह नहीं आया। बात यह थी कि एक आदमी की चोरी हो गई थी। मैंने तहक़ीक़ात करके चोर को मय माल के पकड़ लिया। जिसकी चोरी हुई थी, उससे कहा—'माल मिल जाय, तो क्या दोगे?' उसने कहा—'मेरा माल ५००) का है, सौ रुपए आपको दूँगा।' चोर से कहा—'तुम्हें छोड़ दूँ, तो क्या दोगे?' चोर ने भी सौ रुपए देने को कहा। इस प्रकार दोनो से दो सौ लेकर मैं घर बैठा। जिसकी चोरी हुई थी, उसका बहनोई कांग्रेसी था।

चोरी की ख़बर पाकर वह आया, और यहाँ का हाल सुनकर उसने एक अर्ज़ी एस्० पी० को और दूसरी कलेक्टर को भेज दी। अब मैंने उसे जो बुलाया, तो नहीं आया। मेरा माथा ठनका कि कहीं कोई बात न हो जाय। एस्० पी० ने दूसरे इलाक़े के इंस्पेक्टर सरकिल को चुपचाप तहक़ीक़ात के लिये भेजा। वह सीधे वहाँ पहुँचे, और उस शख़्स के तथा दो-तीन गवाहों के भी बयान लिए। चोर को भी डाट-डपटकर पूछा। उसने कहा—'बात तो सही है, पर मुझे तो रोज़ आप लोगों में रहना है, इसलिये किसी अफ़सर के सामने न कहूँगा।' इंस्पेक्टर चुपचाप तहक़ीक़ात करके जब चले गए, तब मुझे ख़बर हुई। अब क्या हो? उन्होंने जैसी-की-तैसी रिपोर्ट दे दी। एस्० पी० ने मुझे फ़ौरन् मुअत्तिल कर दिया। मुक़दमा चला। जो रुपए मेरे पास थे, वे सब मुक़दमें की पैरवी में ख़र्च हो गए। वकीलों ने भी ख़ूब लूटा। उनके मुंशी लोगों ने बात-बात पर पैसा वसूल किया। इधर कुर्सी से उतार दिया गया, तो आमदनी और शान भी जाती रही। कई महीने मुक़दमा चलने के बाद जब धन से हीन हो गया, तब मुक़दमे का फल निकला, और मैं बरख़ास्त कर दिया गया। मैंने इंस्पेक्टर जनरल के यहाँ अपील कर दी।

"अब भी मेरे होश ठिकाने न आए। कई महीने की दौड़-धूप, परेशानी, खाने-पीने की अनियमितता ने मुझे रोगी बना दिया। भूख बिदा हो गई, जिगर ने काम करना छोड़ दिया, अर्श ने अपना ज़ोर दिखाया। पहले तो पेटेंट दवाइयाँ खाता रहा, पर बदपरहेज़ी के सामने दवा की एक न चली। तब डॉक्टर और वैद्यों की शरण ली, पर वे भी सफल न हुए। अब जीवन से निराश, संबंधियों से हताश आपकी शरण आया हूँ। एक बात कहना भूल गया। जिस दिन मेरे पिताजी ने मेरी बरख़ास्तगी की ख़बर सुनी, चारपाई पर पड़ गए, और फिर न उठे।"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"दरोग़ाजी ! दवा तो मैं करूँगा, पर आपको पाप का फल तो भोगना ही पड़ेगा।"

दारोग़ाजी ने कहा—"डॉक्टर साहब ! मैं बहुत बदपरहेज़ हूँ। कल बाज़ार जाकर दही-बड़े और चाट खा आया, तब से कई दस्त हुए, और पेट में गड़बड़ है।

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"दरोग़ाजी, आपका ईश्वर ही रक्षक है। आप किसी को बुलाइए, जो आपकी देख-रेख करे, नहीं तो मेरी दवा से भी कुछ लाभ न होगा।"

दारोग़ाजी ने कहा—"मेरा कोई सगा-संबंधी मेरे पास खड़ा न होगा। कहाँ से बुलाऊँ—मामा के यहाँ से ? ससुर के यहाँ से ? घर से ? सर्वत्र ही मैंने विष के बीज बोए हैं। आप जैसा उचित समझें, वैसा करें। इतना ध्यान रक्खें कि आज मेरा पेट ख़राब है। देखिए, मैं फिर पाख़ाने जाता हूँ।"

[१८]

रात को दारोग़ाजी की कथा संक्षेप में डॉक्टर गोपाल ने जागेश्वरी को सुनाई। स्त्री की दुर्दशा का हाल सुनकर जागेश्वरी को क्रोध हो आया। बोली—"ऐसे महापापी को अभी अस्पताल से बाहर कर दीजिए। वह अपने पापों का फल भोगे।"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"पर डॉक्टर का कर्तव्य तो यह नहीं है। रोगी होने के नाते उसके पास जो भी आए, डॉक्टर को उसकी सहायता करनी चाहिए। दारोग़ाजी मेरे पास रोगी बनकर आए हैं, मुझे डॉक्टर की हैसियत से उनकी दवा करनी चाहिए। फिर अब तो वह अस्पताल में भर्ती हो चुके हैं; उनको निकाल बाहर करना अकर्तव्य और अनावश्यक है। अब तो कोई ऐसी सूरत सोचनी चाहिए, जिससे दारोग़ाजी का उद्धार हो।"

जागेश्वरी ने कहा—"दारोग़ाजी का उद्धार हो या न हो, पर रामदुलारी का उद्धार होना चाहिए, जिस पर मनमाने अत्याचार हुए हैं।"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"बहुत ठीक। पर बिना दारोग़ाजी का उद्धार हुए रामदुलारी का उद्धार क्या होगा? पहले दारोग़ाजी आरोग्य लाभ करें, उनकी नौकरी बहाल हो, तब रामदुलारी का उद्धार होगा, नहीं तो रामदुलारी दारोग़ाजी के साथ और भी दुःख उठाएगी। अब दारोग़ाजी को दस्त होना शुरू हो गए हैं। कल हज़रत ने दही-बड़े और चाट ख़ूब खाई। तब से दस्त हो रहे हैं। उनकी देख-रेख को कड़ी तबियत का आदमी चाहिए। कोई नर्स आगरे में हो, तो बतलाओ।"

जागेश्वरी ने कहा—"रामदुलारी से अच्छी और कौन नर्स होगी, उसी को बुलाकर, नाम बदलकर उनके पास कर दीजिए।"

डॉक्टर गोपाल को जागेश्वरी की सम्मति बहुत पसंद आई। दूसरे दिन सबेरे, पहली मोटर से, एक आदमी भेजकर माधोसिंह को बुलाया, और चिट्ठी में दारोग़ाजी का साधारण हाल लिख दिया। वह आदमी शाम को माधोसिंह को लेकर लौट आया। डॉक्टर गोपाल ने सारी परिस्थिति समझाई, तो माधोसिंह ने कहा—"जो बताइए, वह किया जाय।"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"उनको एक नर्स की ज़रूरत है। मैं आपकी लड़की का नाम बदलकर उनके पास रख दूँगा। पहचान लेंगे, तो हर्ज नहीं, और न पहचानेंगे, तो और भी अच्छा। पीछे देखा जायगा। आप जल्द-से-जल्द लड़की को ले आइए, दारोग़ाजी को दस्त होने लगे हैं, इसलिये उनकी सेवा के लिये लड़की की ज़रूरत है।"

दूसरे दिन माधोसिंह सबेरे की पहली गाड़ी से गए, और शाम को रामदुलारी को लेकर लौट आए। रामदुलारी को जागेश्वरी के सिपुर्द कर दिया गया। उन्होंने रामदुलारी को सारी बातें समझा-कर, दूसरे दिन नर्स के वस्त्र पहनाकर, डॉक्टर गोपाल के साथ कर दिया, और कहा—"देखिए, इस नर्स का नाम शांती है, इसे दारोग़ाजी की सेवा करने को उनके पास कर आइए।"

डॉक्टर गोपाल मुस्किराते हुए शांती को लेकर चले। दारोग़ाजी के सामने शांती को ले जाकर कहा—"दारोग़ाजी! आपके लिये नर्स आ गई। आप जो उचित समझें, अच्छे होने पर इसे दे दें। बाक़ी का प्रबंध मैं करूँगा। इसका नाम शांती है। यह मन लगा-कर आपकी सेवा करेगी। एक बात और है। यह आप ही की जाति की है। आप चाहें, तो इसके हाथ का भोजन ख़ुशी से कर सकते

हैं। याद रखिए, एक बार दही-बड़े और चाट उड़ाने का यह फल हुआ ; यदि आप भविष्य में ऐसा करेंगे, तो मैं दवा न करूँगा।"

दारोग़ाजी दस्तों से परेशान थे। कई जगह धोती ख़राब हो गई थी। शांती ने कपड़े बदलवाकर दारोग़ाजी को लिटा दिया, और मैले कपड़े साबुन से साफ़ कर डाले। छुट्टी पाकर पंखा झलने लगी, सिर सहलाया। पहले ही दिन शांती ने दारोग़ाजी को अपनी सेवा से प्रसन्न कर लिया। शाम को जब डॉक्टर गोपाल देखने आए, तो दारोग़ाजी ने कहा—"शांती ने मेरी सेवा बड़ी लगन से की। मैं आपका अत्यंत आभारी हूँ कि ऐसी अच्छी नर्स बुला दी।"

दारोग़ाजी ने शांती को नहीं पहचाना। माधोसिंह कुछ रुपए ख़र्च के लिये देकर घर लौट आए। रामदुलारी से तीसरे-चौथे दिन पत्र भेजने को कह गए थे, और बता दिया था कि उत्तर डॉक्टर गोपाल द्वारा मिलेगा।

दारोग़ाजी की दशा शोचनीय थी। डॉक्टर गोपाल बहुत यत्न-पूर्वक उनकी दवा कर रहे थे। पर एक रोग हो, तो जल्द ठीक हो जाय, जहाँ चार-चार रोग हों, वहाँ जल्दी नीरोग होने की आशा दुराशा-मात्र है। एक दिन डॉक्टर गोपाल ने कहा—"दारोग़ाजी! कुछ देर ईश्वर का ध्यान भी किया कीजिए।"

दारोग़ाजी तो दफ़ा ११०, १०६, १०७, ३०२ आदि के अभ्यस्त थे, ईश्वर का नाम कभी भूलकर भी न लिया था। अब जो अपार कष्ट में फँस गए, तो डॉक्टर के याद दिलाने पर ईश्वर का स्मरण हुआ। किसी साधु की सेवा नहीं की, उल्टे दो-चार साधुओं को झूठे अभियोग लगाकर जेल भिजवा दिया। फिर ईश्वर-प्रार्थना कैसे हो? याद आया कि हाई स्कूल की हिंदी-पाठ्य-पुस्तक की कविताएँ स्मरण-शक्ति के किसी कोने में छिपी पड़ी हैं। उनको ज़ोर लगाकर याद किया, तो याद आने लगीं। पहले दिन

दो-एक याद आईं, दूसरे दिन कई एक हो गईं। अब नित्य प्रातः-काल प्रार्थना करने लगे—कुछ गद्य में, कुछ पद्य में। शांती बड़े प्रेम से सेवा कर रही थी। एक दिन उसने प्रातःकाल जगकर सुना कि दारोग़ाजी प्रार्थना कर रहे हैं—

"आगे रहे गनिका, गज, गीध, सु तौ अब कोऊ लखात नहीं हैं;
पाप-परायन, ताप-भरे 'परताप'-समान न आन कहीं हैं।
हे जगनायक, देव-प्रभो! जग यों तो भले औ' बुरे सब ही हैं;
दीनदयालु! औ' दीन-प्रभो! तुम-से तुम ही, हम-से हम ही हैं।
मो-सम कौन कुटिल, खल, कामी!
जा तन दियो, ताई बिसरायो, ऐसो नमकहरामी। मो-सम०
भरि-भरि पेट बिषय को धावत, जैसे शूकर गामी;
हरिजन छाँड़ि हरी-बिमुखन की निसि-दिन करत गुलामी। मो-सम०
पापी कौन बड़ो जग मोते, सब पतितन मैं नामी।
'सूर' पतित को ठौर कहाँ? तुम बिनु श्रीपति, स्वामी! मो-सम०

"हे दयालु, करुणा-सिंधु, अशरण-शरण, दीन-बंधु! संसार में मुझ-सा पापी कोई न होगा। इष्ट-मित्र, भाई-बंधु, माता-पिता तथा सती-साध्वी पत्नी, सभी को मैंने अपने दुर्व्यवहारों से सताया। भूलकर भी हे परम-पिता, तुम्हारा नाम नहीं लिया। जो-जो अत्याचार तुम्हारी मानवी सृष्टि पर मैंने किए हैं, उन्हें स्मरण कर हृदय काँपने लगता है। तुम्हारा नाम लेने के स्थान पर दुष्कियों की माला जपी। दिन-भर में हज़ारों गालियाँ बक डालीं, पर इस जिह्वा पर तुम्हारा नाम भूलकर भी नहीं आया। न-जाने कितने दीन-दुखिया मेरे हाथों सताए गए। कर्तव्य-पालन के नाम पर न-जाने क्या-क्या अत्याचार मैंने किए। रिश्वत लेकर सत्य को असत्य और स्याह को सफ़ेद कर दिखाया। किसी का अपराध किसी के सिर थोप दिया। कहाँ तक गिनाऊँ, मेरे पापों की गणना नहीं हो सकती। एक हो,

तो कहूँ। सारा जीवन पाप-पंक से परिपूरित और कलंक-कालिमा से कलुषित है। फिर भी संसार में और जीने की इच्छा रखता हूँ। एक बार यदि स्वस्थ हो जाऊँ, तो भूलकर भी पाप-पथ पर पग न धरूँगा। सौ बार कहकर मुकर गया, शपथ खाकर भी वचन का पालन न किया। आज तुम्हारा नाम लेते हुए लज्जा से सिर झुक जाता है, सम्मुख आने को नहीं होता। हे दीनों के नाथ! पापियों के उद्धारक! दुखियों के सहायक! यह नराधम तुम्हें छोड़ किसकी शरण जाय? मैं स्वयं मानता हूँ कि मैं अधम, नहीं-नहीं, अधमाधम हूँ। क्षमा-योग्य नहीं हूँ, क्योंकि अपने जीवन में मैंने कभी किसी को क्षमा नहीं किया, पर तुम तो अशरण-शरण हो, पतित-पावन हो, तब तुम्हें छोड़ किसकी आशा करूँ?

"माता-पिता मेरे वियोग में मर गए। मेरे दुष्कृत्यों से उन्हें हार्दिक वेदना हुई। जिनकी तीर्थ समझकर पूजा करनी चाहिए थी, उन्हें मर्मांतक चोट पहुँचाई। अब मैं तुम्हारे चरणों की शरण में आने का दुस्साहस किस बल पर करूँ? हे सच्चिदानंद! जितने ही बड़े पापी को तारोगे, उतनी ही प्रशंसा पाकर पतितोद्धारक कहाओगे। मैंने पूजा-पाठ करनेवालों की हँसी उड़ाई। माला फेरनेवालों को धूर्त और पाखंडी समझा। कितने ही साधु गेरे इन हाथों से पीटे गए, और पीटी गई वह सती-साध्वी, जो जीवन की चिरसंगिनी थी! उस पर जो-जो अत्याचार मैंने किए, वे गिनती के बाहर हैं। उन्हें स्मरण कर क्या मुझे कभी कोई क्षमा कर सकता है? कभी नहीं। उसी के पापों का फल आज पा रहा हूँ। मेरे अत्याचारों से तंग आकर एक दिन उसने कहा था—'मेरे कारण आपको कष्ट होता है, अतः मुझे विष खिला दो, जिससे तुम्हारा कष्ट दूर हो जाय।' मेरे कारण उसे घोर कष्ट था, किंतु उसने सारा अपराध अपने सिर लेकर मुझे कष्ट से मुक्त होने की विधि बताई, मेरे सुख के लिये अपने प्राणों

की बाज़ी लगाई। सती-शिरोमणे! मैं आज नहीं जानता, तुम किस अवस्था में हो; पर दिव्य चक्षुओं द्वारा इस अपने पापी पति की दुर्दशा देख लो। मैं आज यह रौरव भोग रहा हूँ। तुम्हें घर पर कितना ही कष्ट क्यों न हो, किंतु मेरी दशा से तो हज़ार दर्जे अच्छी दशा में होगी। तुम्हें जो-जो दुख दिए थे, आज उन्हीं के बदले मृत्यु-शय्या पर पड़ा नरक-यातनाएँ भोग रहा हूँ।

"मैंने अपने जीवन में किसी को सुख देने का ध्यान भी न किया, अब मैं किस मुँह से सुख पाने की आशा करूँ? कोई संबंधी मुझसे खुश नहीं। हाय! आगरेवाले ब्याह में मेरा कैसा दिमाग़ फिर गया था कि किसी की बात न मानी। और, मानता कौन? शान-शेख़ी का भूत जो सवार था, 'मैं भी कुछ हूँ' की ऐंठ जो थी, 'मेरा कोई क्या करेगा' का मद जो सवार था। आज मैं इस कष्टमय जीवन का इसलिये स्वागत करता हूँ कि इससे तुम्हारी याद तो आई। पिता! मैं मरने से नहीं डरता, केवल कष्टों को सहन करने की शक्ति दीजिए। अंत में स्वीकार करता हूँ कि मैं पापी हूँ। पर अब तो तुम्हारी शरण में हूँ, चाहे पार करो, चाहे डुबा दो।"

शांती शांति के साथ यह प्रार्थना सुनती रही। मेरे संबंध में भी इनको पश्चात्ताप है, यह जानकर उसे परम संतोष हुआ। सवेरे जाकर जागेश्वरी से कहा—"बहनजी! आज तो उन्होंने ईश्वर को भले प्रकार स्मरण किया, साथ ही मेरे लिये भी पश्चात्ताप किया।"

जागेश्वरी ने कहा—"ईश्वर सब ठीक करेगा।"

आठ-दस दिन तक मनोयोग-पूर्वक औषधि करने पर भी जब दारोग़ाजी की दशा न सँभली, तो डॉक्टर गोपाल ने जागेश्वरी से सम्मति करके औषधि बदलनी चाही। जागेश्वरी ने कहा—"मैं आजकल प्राकृतिक चिकित्सा-संबंधी पुस्तकें पढ़ रही हूँ। विश्व-

वंद्य महात्मा गांधीजी भी उसके समर्थक हैं। क्यों न दारोग़ाजी पर उस प्रणाली का प्रयोग किया जाय ?"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"मैंने भी दो-एक पुस्तकें देखी हैं, पर किसी रोगी पर उनका प्रयोग नहीं किया। अच्छा है, दारोग़ाजी पर उसका प्रयोग करके देख लिया जाय।"

आज से दारोगाजी पर प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली का उपयोग होने लगा। तीन दिन का उपवास और नित्य एनीमा देना तय हुआ। चौथे दिन फलों का रस दिया गया। तीन दिन बाद शाकों के रस, फिर अन्न और दूध की बारी आई। पहले सप्ताह में तो वह इतने निर्बल हो गए कि उठना-बैठना कठिन था, पर एनीमा से आँतों का चिपटा-सूखा मल निकल जाने के कारण तबियत हलकी थी।

शांती कभी-कभी आँसू भरकर जागेश्वरी से पूछती—"बहनजी! कैसी दशा है ?"

जागेश्वरी कहती—"ठीक है, कोई चिंता की बात नहीं, फिर तू इतना चिंतित क्यों है ? तुझे क्या सुख इनसे मिला ?"

शांती कहती—"बहन! इनका सारा रोग मेरे शरीर में आ जाय, मैं मर जाऊँ, पर यह अच्छे हो जायँ।"

धन्य हिंदू-नारी! तुम सचमुच पूजा के योग्य हो। जिस पति ने पिशाच बनकर घोर अत्याचार किया, उसी पति के स्वास्थ्य के लिये अपने प्राणों का बलिदान करने को प्रस्तुत है। माता-पिता के दबाव से अदालत में नालिश की, पर पति को सामने देखकर कह दिया—"मुझे कुछ नहीं चाहिए।" सचमुच तुम धर्म की मूर्ति हो। तुम्हीं से भारत का भाल ऊँचा है। कष्ट-सहन में तुम्हारा जोड़ नहीं है। रात-दिन एक करके पति की सेवा कर रही हो, किस आशा पर ? सुख के लिये ? कदापि नहीं। सुख तो दूर, उलटा दुख-ही-दुख मिला,

पर आज मन पर मैल नहीं है। उसी दुःखदायी पति पर सर्वस्व निछावर करने को उद्यत है। तुमसे जगत् शिक्षा ग्रहण न करे, तो किससे करे ?

पंद्रहवें दिन दशा कुछ सँभली। जो भोजन दिया गया था, उससे संतुष्ट न होकर और भोजन माँगा। जागेश्वरी ने कहा—"बस, मैदान मार लिया। अब भूख जाग्रत् हो गई, बस, सब कुछ ठीक है।"

शांती से कहा—"अब आपकी सावधानी का समय है। यह अव्वल नंबर के बदपरहेज़ हैं। दही-बड़े और चाट से चित्त हटा लें, नहीं तो सामने मृत्यु नाच रही है।"

शांती ने कहा—"आप निश्चिंत रहें, मैं ख़ूब सावधानी रक्खूँगी।"

ईश्वर की कृपा, जागेश्वरी की दवा और शांती के अथक परिश्रम से दारोग़ाजी ने आरोग्य-लाभ किया। चारपाई से उठकर चलने-फिरने लगे। डॉक्टर गोपाल ने कहा—"देखिए, बहुत सचेत रहिए। यदि अब की बार चारपाई पकड़ी, तो फिर उठ न सकोगे।"

दारोग़ाजी ने कहा—"अब तो सब कुछ भोग लिया, अब न मानूँगा, तो मौत सामने खड़ी है। एक प्रार्थना है, मेरी अपील आई० जी० के यहाँ है, शायद कामयाब हो जाय। यहाँ के एम्० एल्० ए० से यदि कुछ परिचय हो, तो सिफ़ारिश करा दीजिए। जीवन-भर आपका एहसान न भूलूँगा।"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"देखा जायगा। हाँ, शांती की आवश्यकता न हो, तो उसे भेज दूँ ?"

"दारोग़ाजी ने कहा—"मैं उसकी सेवा से पैसों द्वारा उऋण नहीं हो सकता। उसने जिस लगन से सेवा की है, उसका बदला सात

जन्म में भी न चुका सकूँगा। उसे अभी रहने दीजिए। उसके बिना तो मैं मर जाऊँगा।"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"तो क्या ज़िंदगी-भर साथ रखने का विचार है?"

दारोग़ाजी ने कहा—"ऐसे भाग्य कहाँ?"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"आप ही की बिरादरी की है। सब तरह से ठीक है। यदि इच्छा हो, तो मैं कहूँ?"

दारोग़ाजी के मुँह में पानी भर आया। बोले—"जिसे ऐसा साथी मिले, उसका सौभाग्य ईर्ष्या की वस्तु हो सकती है। मैं ऐसा सौभाग्यशाली नहीं।"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"अच्छा; उससे बात करके तब कहूँगा।"

वकील साहब के भाई आई० जी० के ऑफ़िस में नौकर थे। उनको सारा हाल लिख भेजा गया। एम्० एल्० सी० से भी कह दिया गया। वकील साहब के भाई की चिट्ठी आई कि अगले पंद्रह दिन में मुआमिला तय हो जायगा। यदि कोई सिफ़ारिश कर देगा, तो और भी अच्छा, अन्यथा मैं जो कुछ भी कर सकता हूँ, करूँगा। डॉक्टर गोपाल ने दारोग़ाजी को सारा हाल बता दिया, और शांती के लिये फिर पूछा, तो दारोग़ाजी ने कहा—"मेरा उस पर कोई अधिकार तो है नहीं, पर यदि.....।"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"मैंने उसे आधा राज़ी कर लिया है। आप ख़ूब तैयार हैं?"

दारोग़ाजी—"हाँ, मैं राज़ी हूँ।"

डॉक्टर गोपाल—"पहलेवाली पत्नी की भाँति दुर्व्यवहार तो न करेंगे?"

दारोग़ाजी—"कदापि नहीं। वह तो मूर्ख थी।"

डॉक्टर गोपाल—"तो कल या परसों ब्याह हो जायगा।"

दारोग़ाजी शांती को पाने के लिये बहुत उत्सुक थे। तीसरे दिन शाम को एक पंडितजी को बुलाकर दोनो का ब्याह अस्पताल में ही करा दिया गया। जागेश्वरी ने दारोग़ाजी से ख़ूब शर्तें तय कीं। ब्याह करके दारोग़ाजी लखनऊ गए, और शांती को उसके बाप के घर भेज दिया गया। दारोग़ाजी फिर बहाल कर दिए गए। ख़ुशी-ख़ुशी लौटकर आए। डॉक्टर गोपाल के पैर पकड़कर बोले—"आपने जीवन दिया, और नौकरी दी। मैं आपसे जीवन-भर उऋण नहीं हो सकता।"

डॉक्टर गोपाल ने आदर से कुर्सी पर बिठाते हुए कहा—"मैं जो कहूँ, उसे सुनिए—रिश्वत का नाम भी न लीजिए, सादा जीवन व्यतीत कीजिए। कर्तव्य का ठीक विधि से पालन कीजिए। झूठे मुआमिले का नाम न लीजिए। और, सबसे बढ़कर बात यह कि शांती के साथ सद्व्यवहार कीजिए। जब काम पर जाने के लिये आपके पास हुक्म आ जायगा, तब मैं उसे बुला दूँगा।"

दारोग़ाजी ने कहा—"बहुत अच्छा। यदि आज्ञा हो, तो घर जाकर देख आऊँ। बहुत दिन से नहीं गया।"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"अवश्य।"

[१९]

मनुष्य पर जब विपत्ति आती है, तो अकेली नहीं आती। दारोग़ाजी ने पत्नी खोई, मा-बाप खोए, संबंधी अप्रसन्न किए, स्वास्थ्य नष्ट किया, और नौकरी से हाथ धो बैठे। एक साथ आपत्तियों ने उन्हें घेरा। अब स्वस्थ हुए, नौकरी मिली, और पत्नी भी। घर पर आए, तो देखा, घर का माल-असबाब चाचा के लड़के के पास है। उसने देने में कोई आनाकानी न की। साथ ही काश्तकारों पर पिछले दो-तीन वर्ष का लगान बक़ाया था, वह भी वसूल किया। घर साफ़ करवाया। मा एक कोठरी में अपना गुप्त रुपया और ज़ेवर रखती थीं। उसे खुदवाया, तो पाँच सौ रुपए नक़द और कुछ आभूषण मिले। समय अच्छा है, तो सभी कुछ अच्छा है। ख़ाली घर में हाथ डाला, और कुछ पा गए।

कुटुंबी राजेंद्र को महा अभिमानी समझते थे, किंतु अब की बार तो वह नया चोला बदलकर आए थे। सब भाइयों से प्रेम, बड़ों का आदर और छोटों को प्यार करते थे। बहुत नम्र वचन बोलते थे। खेतों और ज़मींदारी का सारा हिसाब चाचा के लड़के को सौंप दिया। जो रुपया पास था, उसे लेकर इटावे आए। डॉक्टर गोपाल को रुपया और आभूषण देकर कहा—"इसे रख लीजिए, और उसे (शांती को) दे दीजिएगा। मैं रायबरेली में तैनात किया गया हूँ। वहाँ जाकर चार्ज ले आऊँ, मकान ठीक कर आऊँ, तब आकर बुला ले जाऊँगा।"

दारोग़ा राजेंद्रसिंह के एक साथी मुक्ताप्रसादजी थे, जिनकी मात-

हती में राजेंद्रसिंह ने काम किया था। दोनों में खूब पटती थी। मुक्ताप्रसाद का घर कानपुर में था। वह रिटायर होकर घर पर रहते थे। नौकरी से अलग होने पर राजेंद्रसिंह ने अपना माल-असबाब इन्हीं के घर, कानपुर में, रख दिया था। रायबरेली जाते हुए पहले कानपुर ठहरकर थोड़ा-सा सामान साथ ले लिया। रायबरेली जाकर चार्ज लिया, और डॉक्टर गोपाल को चिट्ठी लिखी कि मैं अमुक तिथि को इटावा आ रहा हूँ। दूसरे दिन कानपुर से असबाब लेता हुआ रायबरेली चला आऊँगा। कृपा करके बुलवा लीजिएगा।"

ठीक समय पर शांती उर्फ़ रामदुलारी बुलाई गई। रुपया और ज़ेवर देखकर उसे कुछ-कुछ विश्वास हुआ कि अब मेरा भाग्य शायद धोखा न दे। जागेश्वरी ने पूरा आश्वासन दिया। सबसे मिल-मिलाकर शांती और दारोग़ाजी कानपुर आए। मुक्ताप्रसादजी के यहाँ से आवश्यक सामान ले लिया, और कह दिया—"शेष सामग्री जब मैं मँगाऊँ, तब रेल द्वारा भेजने की कृपा करें।"

रायबरेली पहुँचकर शांती ने देखा, छोटा-सा, सुंदर, साफ़-सुथरा घर है। चौका-बर्तन के लिये कहारी नौकर है। शहर में ही काम करना होगा, इसलिये घोड़ा न रखकर साइकिल रक्खी गई।

शांती ने पहले ही दिन देखा कि भाग्य ने पलटा खाया है। दारोग़ाजी घर का प्रबंध शांती से पूछ-पूछकर करते हैं। क्या शाक आएगा? किस-किस वस्तु की आवश्यकता है? आदि-आदि सब चीज़े शांती से पूछकर ही मँगाई जाती हैं। आवश्यक सामान तो कानपुर से आ ही गया था, अतः बहुत कम सामग्री की आवश्यकता थी। नित्यप्रति व्यवहार में आनेवाले पदार्थों—शकर, तेल, घी, शाक आदि—की ही आवश्यकता थी। कपड़े की तंगी का ज़माना था, पर पिताजी तहसीलदार के पेशकार थे, अतः शांती को कपड़ों का अकाल न था। इधर दारोग़ाजी को भी सब साधन सुलभ थे,

अतः किसी प्रकार का कष्ट न था। शाम को भोजनोपरांत शांती दारोग़ाजी के पैर दाबने बैठ गई। दारोग़ाजी ने बहुत इंकार किया, किंतु शांती ने न माना। दारोग़ाजी बीच-बीच में कह देते थे—"बहुत हो गया, रहने दो।" पर शांती अपना काम करती जा रही थी। जब ज़बान से कहने का असर न हुआ, तब दारोग़ाजी ने हाथ पकड़कर खींच लिया, और अंक में भर लिया।

गृहस्थी की गाड़ी ठीक विधि से चल निकली। शांती का विश्वास प्रत्येक नया दिन आने पर पुष्ट होता जाता था कि अब मेरा भाग्य धोखा न देगा। पर सोचती थी, कब तक शांती बनकर शांति से रह सकूँगी? एक-न-एक दिन रामदुलारी बनकर प्रकट होना पड़ेगा। पिता और भाई कब तक चुप बैठे रहेंगे? पर इन सब बातों में व्यर्थ माथा-पच्ची करके उसने अपने समय को व्यर्थ नष्ट न किया। अब की बार एक बात और की—दारोग़ाजी की प्रत्येक बात की देख-रेख रक्खी। महीना हो गया। वेतन मिला। दारोग़ाजी ने सब रुपया शांती के हाथों पर रख दिया। शांती ने कहा—"बस, महीने-भर में इतना ही कमा पाए। थानेदार तो सैकड़ों रुपए रोज़ पैदा करते हैं!"

दारोग़ाजी ने कहा—"डॉक्टर गोपाल से क़सम खा चुका हूँ कि रिश्वत न लूँगा, साथ ही चाहे जितना कष्ट हो, वेतन में ही निर्वाह करूँगा। एक बात है। तुमको जिस वस्तु की आवश्यकता हो, पैसा तुम्हारे हाथ में है, तुरंत मँगा लो। मेरे लिये चार सूखी रोटियाँ पर्याप्त हैं, पर तुमको कष्ट न होने दूँगा।"

शांती ने कहा—"एक बात मैंने सुनी है, यदि·····।"

दारोग़ाजी की हवा खिसक गई। अपने को पहचानते थे कि मैं कितने पानी में हूँ। डरते-डरते कहा—"क्या बात है?"

शांती—"मैंने सुना है, आप·····।"

दारोग़ाजी—"क्या सुना है ?"

शांती—"यही कि आपके पास मेरी एक बहन पहले से···।"

दारोग़ाजी—"ठीक है।"

शांती—"तब आपने मुझे इस बंधन में बाँधकर ठीक नहीं किया।"

दारोगाजी—"पर अब तो जो होना था, हो गया।"

शांती—"यदि किसी दिन वह आ खड़ी हुई, तो ?"

दारोगाजी—"मैंने उनके साथ ऐसा दुर्व्यवहार किया है कि आने का नाम न लेंगी।"

शांती—"यदि आ गईं, बाप बुला लाया, तो ?"

दारोगाजी—"घर में न घुसने दूँगा।"

शांती—"जो सुनेगा, क्या कहेगा ?"

दारोगाजी—"कुछ भी हो।"

शांती—"इससे अच्छा तो यही है कि आप उन्हें बुला लाइए।"

दारोगाजी—"दुनिया में कोई स्त्री सौत को नहीं चाहती।"

शांती—"पर मैं चाहती हूँ।"

दारोगाजी—"क्यों ?"

शांती—"अकेली रहती हूँ, एक से दो हो जाऊँगी।"

दारोगाजी—"वह जूता चलेगा कि मेरी और तुम्हारी अक़्ल ठिकाने लग जायगी।"

शांती—"मैं ऐसा व्यवहार करूँगी कि वह बहुत प्रसन्न रहेंगी। सारा घर उनको दे दूँगी।"

दारोगाजी—"और मुझे किसको दोगी ?"

शांती—"दोनो को आधा-आधा।"

दारोगाजी—"तो मैं मरा। भाई, मैं ऐसा करने का नहीं। फिर, तुम उसके स्वभाव से परिचित नहीं। बस, समझ लो—महामूर्खा।"

शांती—"तब तो और अच्छा है। चौका-बर्तन आदि मोटा काम उससे लूँगी।"

दारोगाजी—"ऐसी काठ की उल्लू भी नहीं है।"

शांती—"आप तो कहते हैं—महामूर्खा।"

दारोगाजी—"भोजन आदि सारा काम तुम्हारी तरह से ही करती है।"

शांती—"और शक्ल-सूरत ?"

दारोगाजी—(शांती की ओर देखकर) "बहुत कुछ तुम्हारी ही जैसी।"

शांती—"तब मुझमें क्या विशेषता रही ? वही रोटी-दाल, वही काम, वैसी ही शक्ल-सूरत।"

दारोगाजी—"तुम और चीज़ हो।"

शांती—"रूप वैसा ही, गुण वैसा ही, अब भेद किस बात का ?"

दारोगाजी—"चाहे जो कुछ हो, मुझे पसंद नहीं आई।"

शांती—"नापसंदी की क्या बात थी ?"

दारोगाजी—"दिल जाने, मैं क्या कहूँ—

काले-गोरे पै कुछ नहीं मौक़ूफ़ ;
दिल के आने के ढँग निराले हैं।"

शांती—"क्या आपकी सेवा में कभी त्रुटि होने दी ?"

दारोगाजी—"ऐसा तो कभी नहीं हुआ। पर एक तो उन दिनों मुझ पर भूत सवार था; दूसरे, कुछ उनकी अनुभव-हीनता थी।"

शांती—"तो अब आप पर कब भूत आएगा ?"

दारोगाजी—"भगवान् न करे, कभी आए।"

शांती—"तो आपके भूत का दोष था, या बहनजी का ?"

दारोगाजी—"दोनो का।"

शांती—"तब तो आपको बुला लाना चाहिए।"

दारोग़ाजी—"आज क्यों ये बेढंगी बातें कर रही हो ?"

शांती—"जीवन-मरण के प्रश्न को आप बेढंगा समझते हैं ? कल को आ बैठीं या भोजन-निर्वाह का दावा कर दिया, तब कैसा होगा ?"

दारोग़ाजी—"दोनो में से कोई बात न होगी। आने को तो मेरा व्यवहार ही उन्हें रोकेगा। जीवन-निर्वाह के लिये उनके बाप ने दावा किया था, पर कचहरी में जाकर उन्होंने कह दिया—'मुझे कुछ नहीं चाहिए।'"

शांती—"शाबाश री बहन ! तूने भारतीय ललना के आदर्श को ऊँचा उठाया। इतने पर भी आपका हृदय न पसीजा ?"

दारोग़ाजी—"कहता तो हूँ कि भूत सवार था।"

शांती—"अब भूत उतर गया या नहीं ?"

दारोग़ाजी—"उतर गया।"

शांती—"तो बुला लाइए। बस, आप वेतन मुझे देते रहें, मैं सारा घर ठीक विधि से चलाती रहूँगी। हम दोनो ख़ूब प्रेम से रहेंगी। वह जो माँगेंगी, मैं दूँगी।"

दारोग़ाजी—"क्यों बैठे-बिठाए आफ़त सिर पर लोगी ?"

शांती—"मेरा हृदय कहता है, मैं सब निभा लूँगी।"

शांती के आत्मविश्वास पर दारोग़ाजी ने उसकी ख़ूब प्रशंसा की, पर पहली पत्नी को बुलाने से साफ़ इनकार कर दिया। अब शांती को जब कभी छेड़ना होता, तो पहली पत्नी को बुलाने की बात कह-कर दारोग़ाजी को चिढ़ाती थी। दारोग़ाजी का प्रेम शांती पर नित्य नया बढ़ रहा था। इधर जागेश्वरी के पत्र शांती के नाम आते थे कि कोई नई बात तो नहीं हुई ? तात्पर्य यह था कि दारोग़ाजी ने पहचाना या नहीं। इधर से शांती पूरा विवरण लिखकर भेज देती। दारोग़ाजी सोलहो आने शांती के क़ब्ज़े में थे। शांती ने अपने पिता

को सारे विवरण का संक्षिप्त परिचय देकर पत्र लिखा, साथ ही उत्तर न देने को लिख दिया।

जेठ की दोपहरी थी। दारोग़ाजी थाने के काम से छुट्टी पाकर घर आए। शांती शाक और दाल बनाकर इस प्रतीक्षा में बैठी थी कि दारोग़ाजी आवें, तो खाना बनाऊँ। उसे पहले ऐसे ही मौक़े का स्मरण होकर दुःख हुआ। पर आज तो दारोग़ाजी हँसते हुए घर आए, और शांती से कहा—"तुम्हारा भाग्य फल लाया?"

शांती ने पूछा—"क्या बात है?"

दारोग़ाजी ने कहा—"जितने दिनों नौकरी से अलग रहा, उतने दिनों की तनख़्वाह मिलने का आज ऑर्डर आ गया।"

शांती ने कहा—"तो इस ख़ुशी में उन बहनजी को बुला लो।"

"पागल कहीं की!" कहकर दारोग़ाजी ने प्यार से दो उँगलियाँ शांती के कपोलों में मार दीं।

शांती ने कहा—"लीजिए, मेरी मार-पीट का श्रीगणेश भी हो गया।"

दारोग़ाजी ने छाती से लगाकर कहा—"देवी, नाव में धूल न उड़ाओ।"

खाना खाकर दारोग़ाजी लेट रहे, और सो गए। शांती ने खाना खाया, सामान सँभालकर रक्खा, और द्वार के किवाड़ बंद कर, दारोग़ाजी की चारपाई के पास पड़ी हुई चारपाई पर लेटकर सो गई। दारोग़ाजी जगे, तो क्या देखते हैं, शांती की धोती मुँह पर से और बाईं बाँह से हट गई है। उन्होंने देखा, बाईं कोहनी के ऊपर, रुपए के बराबर, एक नीले लहसुन का दाग़ है। ऐसा ही दाग़ रामदुलारी के भी बाएँ हाथ की कोहनी पर था। मुख-मंडल पर दृष्टि गड़ाई, तो जान पड़ा, शांती नहीं, रामदुलारी सोती है। अजीब असमंजस में पड़ गए। क्या रामदुलारी ही शांती का रूप

रखकर तो नहीं आ गई ? आख़िर थानेदार ठहरे, बीसियों बातें पढ़ चुके हैं, बीसियों देख चुके हैं। ख़ूब बुद्धि दौड़ाई, पर कुछ समझ में न आया। सोचने लगे—एक नर्स ऐसे मुझसे क्यों ब्याह करने लगी ? फिर, जैसी सेवा शांती ने की है, वैसी एक नर्स क्या, चार भी नहीं कर सकतीं। और, इसने न अपने मा-बाप को बुलाया, न कुछ किया, महज़ डॉक्टर गोपाल और जागेश्वरी के कहने से मेरे साथ ब्याह कर लिया। अब तो दारोग़ाजी दूर की कौड़ी लाने लगे। न-जाने क्या-क्या सोच डाला, पर ठीक निर्णय न कर सके। तब उन्हें एक युक्ति सूझी—मैंने रामदुलारी को बहुत मारा था, इसलिये उसके शरीर पर चिह्न होंगे। यदि ऐसा है, तो यह शांती न होकर रामदुलारी ही है। अच्छा, मान लो, यह रामदुलारी ही हुई, तब ? बड़ा असमंजस होगा। फिर तर्क ने ज़ोर मारा—अरे, इसीलिये तो बार-बार बहनजी के बुलाने को ज़ोर देती थी, नहीं तो सौत तो चून (आटा) की भी बुरी होती है।

दारोग़ाजी के दिमाग़ में विचार सिनेमा के चित्रों की तरह जल्दी-जल्दी आ रहे थे। अंत में कुछ ठीक निश्चय न कर सके, पर पलड़ा रामदुलारी के होने का ही भारी रहा। धोती उठाकर पीठ का दाग़ देखने का साहस दारोग़ाजी को न हुआ। थोड़ी देर में शांती कुनमुनाकर उठी, अँगड़ाई ली, और दारोग़ाजी की ओर तीव्र कटाक्ष से देखा। दारोग़ाजी ने कहा—

"नाज़ अंदाज़ में, आज़ार-सितम ढाने में—
तुझसे दो हाथ ज़ियादा तेरी अँगड़ाई है।"

इतना कहकर दारोग़ाजी हँस दिए।

शांती ने कहा—"थोड़े-से रुपए मिलेंगे, इसलिये इतनी ख़ुशी ?"

दारोग़ाजी ने कहा—"कारूँ का ख़ज़ाना, कुबेर की निधि

मिलनेवाली है। हाथ आ जाय, तो ठीक है। एक बात पूछूँ, यदि आप ठीक बतला दें।"

शांती—"मैं किसी मुक़दमे में गवाह तो हूँ नहीं, जो यह क़सम खाऊँ।"

दारोग़ाजी—"आप बहुत बड़े मुक़दमे में गवाह हैं। चोरी में पकड़ी जा रही हैं। जामा-तलाशी होने ही वाली है।" (कपड़ों की खोज=जामा-तलाशी)

शांती—"क्या बात है?"

दारोग़ाजी—"आपने चोरी की है। आज थाने में मुझे इत्तिला दी गई है। ठीक बतलाओ, क्या बात है?"

शांती—"मैं और चोरी!"

दारोग़ाजी—"चोरी नहीं, डाका। दिन-दहाड़े लूट लिया।"

शांती—"हटो भी, मुझे परेशान करने आए हो?"

दारोग़ाजी—"सोलहो आने सच कहता हूँ।"

शांती—"भूत तो सवार नहीं हो रहा है?"

दारोग़ाजी—"भूत तो उतर गया, अब देवता सवार होने जा रहा है।"

शांती—"शरबत बना लाऊँ?"

दारोग़ाजी—"पहले जामा-तलाशी दो, तब दूसरी बात करो।"

शांती—"सोते में स्वप्न तो नहीं देखा?"

दारोग़ाजी—"सोते में नहीं, जागते में देखा है। नीला है, और रुपए बराबर है।"

शांती—"क्या?"

दारोग़ाजी—"चोरी का निशान। अब तो मैं तुम्हारी जामा-तलाशी लिए बग़ैर न मानूँगा।"

इतना कहकर दारोग़ाजी शांती की चारपाई पर पहुँच गए, और

पीठ पर से धोती हटाने लगे। शांती मना करती रही, पर दारोग़ाजी न माने। देखा, सारी पीठ पर चोट के चिह्न मौजूद हैं। शांती उठकर खड़ी हो गई, और अपनी धोती सँभालने लगी। दारोग़ाजी ने बढ़कर शांती के पैर पकड़ लिए। शांती ने पैर छुड़ाते हुए कहा—"यह आप क्या कर रहे हैं?"

पर दारोग़ाजी ने पैर न छोड़े। शांती बैठ गई, और बोली—"आज आपको क्या हो गया है?"

दारोग़ाजी ने कहा—"देवी! आज भूत सचमुच उतरा है। मैंने तुम्हें सताया, अनेकों दुख दिए, और तुमने उफ़ न की। अब मैं पैर पकड़कर सारे अपराधों की क्षमा माँगता हूँ। जब तक क्षमा न कर दोगी, पैर न छोड़ूँगा।"

शांती को कोई उपाय न दिखलाई दिया कि दारोग़ाजी से कैसे पैर छुड़ाए, अतः उसने कह दिया—"क्षमा कर दिया।"

अब दारोग़ाजी ने पैर छोड़े, शांती की ओर देखा, और कहा—"देवी! इस जीवन में तुम्हें दुबारा शांती के रूप में पाकर मैं धन्य हुआ! तुम-जैसी देवियों ने ही कर्तव्य-पालन करके धर्म की रक्षा की है। मैं तुम्हारा स्वामी तो दूर, सेवक होने के योग्य भी नहीं हूँ।"

इतना कहकर दारोग़ाजी आँखों में अश्रु भर लाए। शांती ने कहा—"देखिए, अभी बीमारी से उठे हैं। शरीर में पूरी तरह पहले-जैसी शक्ति नहीं आई है, उस पर आप यों खेदित होकर फिर अपने को और निर्बल बनाने की चेष्टा कर रहे हैं। अपने को सँभालिए। जो होना था, हो चुका। कोई कुछ नहीं करता, समय सब कुछ कराता है।"

शांती उठकर पानी लाई, और कहा—"मुँह धो डालिए।"

दारोग़ाजी के फिर आँसू भर आए, और मुँह से बात न निकली। किसी शायर ने इसी मौक़े के लिये कहा था—

"जी में आता है कि थोड़ा और भी रो डालिए;
जब वह आँसू पोछकर कहते हैं—मुँह धो डालिए।"

शांती ने हाथ-मुँह धुलाया, शरबत पिलाया, और कहा—"एक प्रार्थना है, आगे कभी इस प्रकार मुझे लज्जित न करें।"

दारोग़ाजी ने कहा—"देवी! तुमने मुझे महापाप से बचा लिया। यदि तुम शांती होतीं, तो सारे जीवन मेरे हृदय की खटक न जाती। अब तो मैं राजा बन गया, पाप-मुक्त हो गया, अपनी खोई निधि पा गया। मेरे हृदय के हार! विश्वास रक्खो, इस जीवन में अब तुमको स्वामी समझकर सारा कार्य करूँगा, और तुम्हारी सच्ची पूजा करके अपने पिछले पापों का प्रायश्चित्त करूँगा। आज मुझे वह निधि मिली है, जिसका मूल्य आँका नहीं जा सकता।"

शांती ने दूसरे दिन डॉक्टर जागेश्वरी तथा अपने पिता को पत्र लिखकर भंडा-फोड़ कर दिया। पिता से प्रार्थना की—भाई को शीघ्र ही भेज दें। भाई घर पर गर्मियों की छुट्टी में था। माता ने उसे रामदुलारी के पास दूसरे ही दिन भेज दिया। रामदुलारी के भाई का नाम नरेंद्रसिंह था। वह बी० ए० में पढ़ते हैं। यही अंतिम वर्ष है। आज तक रायबरेली नहीं आए थे। रायबरेली आकर सीधे थाने गए। ताँगा बाहर खड़ा करके भीतर सिपाही से पूछा—"दारोग़ाजी कहाँ हैं?"

सिपाही ने कहा—"कौन दारोग़ाजी? नाम बताइए।"

नरेंद्र ने कहा—"राजेंद्रसिंह।"

सिपाही ने कमरे की ओर संकेत करके कहा—दफ़्तर में काम कर रहे हैं।"

नरेंद्रसिंह अंदर गए। दारोग़ाजी के पैर छूकर पास ही कुर्सी पर बैठ गए। दारोग़ाजी ने नहीं पहचाना। चार-पाँच वर्ष पहले नरेंद्र-सिंह चौदह वर्ष के थे। आज उन्नीस-बीस वर्ष के युवक हैं। चेहरा

बदल गया है, साहबी पोशाक में थे। हैट बग़ल में थी। भला, दारोग़ाजी कैसे पहचानते? दारोग़ाजी ने ध्यान से नरेंद्र की ओर देखा। नरेंद्र समझ गए कि पहचाना नहीं, अतः स्वयं ही कहा—"मेरा नाम नरेंद्रसिंह है। मैं खिमसेपुर से आया हूँ।"

दारोग़ाजी कुर्सी पर से उठकर नरेंद्र को चिपट गए। बड़े प्रेम से मिले, आँखों में आँसू भरकर गद्गद कंठ से कहा—"मैंने आप लोगों को इस बात पर विवश किया कि आप लोग मुझे भूल जायँ।"

नरेंद्रसिंह ने कहा—"कुछ नहीं। अंत भला, सो भला।"

दारोग़ाजी ने कहा—"घर हो आए?"

नरेंद्रसिंह ने कहा—"मैं घर जानता ही नहीं। अभी-अभी तो आ रहा हूँ। ताँगा बाहर खड़ा है।"

दारोग़ाजी आवश्यक काग़ज़ों पर हस्ताक्षर करके, जल्दी से नरेंद्रसिंह के हाथ में हाथ देकर ताँगे पर आ बैठे, और घर गए। साले-बहनोई साथ-साथ घर पहुँचे। शांती प्रतीक्षा में बैठी थी कि दारोग़ाजी जी आवें, तो रोटी बनाना प्रारंभ करूँ। दाल और शाक बनाकर तवा चूल्हे पर चढ़ा दिया था। भाई और पति को साथ आते देखकर शांती हर्षोन्मत्त हो उठी। उसे यह विश्वास न था कि भाई नरेंद्र इतनी जल्दी आ जायँगे। भाई ने बढ़कर बहन के पैर छुए। बहन ने हर्ष-भरे नेत्रों से भाई को आशीर्वाद दिया। एक तश्तरी में घर का बना हुआ जलपान ले आई। नरेंद्र ने स्नान किया। साले-बहनोई ने साथ-साथ भोजन किया, और मधुर वार्तालाप भी होता गया।

दोपहर को विश्राम करके दोनो व्यक्ति घूमने निकले। दारोग़ाजी ने अपने इष्ट-मित्रों से नरेंद्रसिंह को मिलाया। शाम को जब दोनो भोजन करने बैठे, तो बातचीत हुई—

नरेंद्रसिंह—"जीजाजी ! जीजी को घर ले जाना चाहता हूँ।"

दारोग़ाजी—"शौक़ से, जब चाहो, ले जा सकते हो।"

नरेंद्रसिंह—"आपको भी पाँच-छ दिन के लिये कष्ट दूँगा।"

दारोग़ाजी—"सादर स्वीकार है। क्या कोई काम है ?"

शांती—"इसी एकादशी को ब्याह है।"

दारोग़ाजी—"बड़ी अच्छी बात है। मैं ज़रूर बारात करूँगा।"

दो दिन रहकर नरेंद्रसिंह चले गए, पर बहन को छोड़ गए। शांती ने कह दिया था—"मैं इनके साथ ही, ब्याह से एक दो दिन पहले, आ जाऊँगी। फिर ब्याह के बाद दस-पाँच दिन बनी रहूँगी।"

[२०]

ब्याह से दो दिन पहले दारोग़ाजी शांती को लेकर ससुराल पहुँच गए। मा ने बेटी को प्रसन्न-मुख देखकर बड़ा आनंद मनाया। ससुर माधोसिंह को हाथ जोड़कर नमस्ते करके जब दारोग़ाजी उनके पास बैठे, तो उन्होंने पूछा—"कहो बेटा! अच्छे रहे?"

उत्तर मिला—"आपकी कृपा से आनंदित रहा। चाचाजी! मैंने आप सब लोगों के प्रति बड़ा अशिष्ट व्यवहार किया, इसलिये मैं अत्यंत लज्जित हूँ। साथ ही विनय-पूर्वक क्षमा-याचना करता हूँ।"

माधोसिंह ने कहा—"जो कुछ था, तुम्हारा लड़कपन था। फिर, समय बड़ा बलवान् है। मनुष्य जो नहीं करना चाहता, समय मनुष्य को विवश करके वही करने की आज्ञा देता है।"

दारोग़ाजी ने कहा—"चाचाजी! फिर भी अशिष्टता सीमा का उल्लंघन कर गई, और आज मुझे अपने उन दुष्कृत्यों पर पश्चात्ताप है। मेरा मुँह आपके सामने नहीं होता। बड़ा साहस बटोरकर आपके सामने आया हूँ।"

चाचाजी ने कहा—"बेटा! सबेरे का भूला शाम को घर आ जाय, तो भूला नहीं कहाता। अब तुम ठीक हो, और ईश्वर करे, ऐसी ही सुबुद्धि बनी रहे। हम लोगों ने वे दिन बड़े कष्ट से व्यतीत किए थे।"

घर से दारोग़ाजी का बुलावा आया। भीतर गए। सासजी को सम्मुख देखकर हाथ जोड़े, क्षमा माँगी, और कहा—"अम्मा!—

'दिल क़ाबू से बाहर था, अक़्ल से भी दूर था;
मेरी ख़ता नहीं थी, ख़ता का क़सूर था।'"

सास ने बढ़कर चिपटा लिया, हाथ चूमा, और प्यार से बिठाया। जलपान के लिये मिठाई ले आईं, और लगीं अपने हाथों खिलाने, जैसे मा अपने छोटे बच्चे को खिलाती है। और, दारोग़ाजी भी मज़े से खाने लगे। मा ने पूछा—"राजेंद्र! तुझे क्या हो गया था, जो हम लोगों को भुला दिया? हमारे लिये तो तू वैसा ही राजेंद्र अब भी है, जैसा उस समय था।"

राजेंद्र ने कहा—"अम्मा! मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी।"

अन्य लोगों से भी राजेंद्र बड़े प्रेम से मिले।

फ़र्रुख़ाबाद से पाँच बजे सबेरे जो गाड़ी छूटती है, वह ग्यारह बजे के लगभग आगरे पहुँचती है, और सीधी जाती है। उसी पर बारात जाना तय हुआ। सबेरे ही सब लोग तैयार होकर स्टेशन गए। वहाँ से रेल पर सवार होकर आगरे पहुँचे। स्टेशन पर लड़कीवाले की ओर से सवारियाँ मौजूद थीं। एक सुंदर धर्मशाला में बारात टिकाई गई, और आदर-सत्कार होने लगा। शाम को दरवाज़े की रस्म होने के लिये बारात लड़कीवाले के घर पर गई, तो दारोग़ाजी ने देखा, यह वही घर है, जिससे अपमानित होकर मैं निकाला गया था। पूछने पर पता चला कि उसी लड़की की छोटी बहन से नरेंद्र का ब्याह हो रहा है। पहले तो राजेंद्र को कुछ झिझक-सी हुई, पर एक क्षण में ही विचार बदल गया। दूर से उन्होंने देखा, लड़की-वाले की ओर से मामाजी भी उपस्थित हैं। लज्जा मालूम हुई। पर फिर विचार किया—हम तो लड़के हैं, दोषी हैं, मामाजी से भी क्षमा माँग लेंगे।

इधर नरेंद्र का ब्याह होकर पालकी लौट आई थी। नरेंद्र ने पालकी से उतरकर पहले राजेंद्र के, फिर अन्य गुरुजनों के पैर छुए;

और लोग तो नरेंद्र से ब्याह के संबंध की बातें पूछने लगे, पर राजेंद्र ने कुछ न पूछा, और मामा से मिलने चल दिए। एक आदमी से पूछा—"सूबेदार साहब कहाँ हैं ?"

उस आदमी ने कहा—"उस कमरे में हैं।"

राजेंद्र ने मामा के सामने जाकर, हाथ जोड़कर नमस्ते की। मामा ने सिर से पैर तक देखा। पाँच वर्ष हो चुके थे। न तो मामा राजेंद्र के ब्याह में गए थे, न बहन-बहनोई के मरने पर गए। एक प्रकार से संबंध-विच्छेद-सा हो गया था। अतः मामा ने पहली दृष्टि में राजेंद्र को न पहचान पाया। पाँच वर्ष पहले जब देखा था, तब राजेंद्र इक्कीस-बाईस वर्ष के थे, रेख उठ रही थी। आज भरा हुआ चेहरा, नोकीली मूछें, शांति-संदेश देनेवाली आँखें कुछ दूसरे ही प्रकार की थीं। जब मामा ने कुछ न कहा, तो राजेंद्र ने कहा—"शायद पहचाना नहीं।"

मामा ने फिर गंभीर दृष्टि डालकर राजेंद्र को देखा, पर मुँह से कुछ नहीं कहा। तब राजेंद्र ने कहा—"मैं हूँ आपका अपराधी राजेंद्र।"

मामा ने अब कहा—"बैठ जाओ! तुम यहाँ कहाँ ?"

राजेंद्र—"इसी बारात में आया हूँ।"

मामा—"इनसे क्या संबंध है ?"

राजेंद्र—"मैं नरेंद्र का·····।"

मामा—"नरेंद्र के कौन हो ?"

राजेंद्र ने सिर नीचा कर लिया।

मामा—"शरमाने की क्या बात, नरेंद्र तुम्हारा साला है ?"

राजेंद्र—"जी।"

मामा—"मुझे यह ज्ञात नहीं, और ज्ञात भी कैसे होता ? मैं तो तुम्हारे ब्याह में गया ही नहीं! बहन-बहनोई मर गए, तब भी नहीं

गया। तुम ऐसे सपूत निकले कि कुल तार दिया। किसी बड़े बूढ़े का ख़याल न करके लाट साहब बन गए। सबको ताक़ में रखकर जो चाहा, सो किया। थानेदार क्या हो गए, वाइसराय हो गए!"

राजेंद्र ने सिर नीचा करके सब कुछ सुना, पर उत्तर कुछ न दिया।

मामा—"तो लाट साहब! आजकल क्या करते हैं? कहाँ हैं?"

राजेंद्र के आँसू भर आए, पर मुँह से कुछ न कहा।

मामा—"रोओ नहीं। मैंने जो पूछा है, वह बताओ।"

राजेंद्र ने मामा के पैरों पर सिर रखकर कहा—"मैं आज अपना अपराध क्षमा कराने के लिये आया हूँ। जब तक आप मुझे क्षमा न कर देंगे, मैं किसी बात का उत्तर न दूँगा।"

मामा—"तुम ठहरे थानेदार, तुमको कौन क्षमा करेगा? तुम्हीं को दूसरों को क्षमा करना पड़ेगा।"

जब राजेंद्र ने पैरों पर से सिर न हटाया, तब मामा ने दोनो हाथों से सिर उठाकर राजेंद्र को बिठाया, और पूछा—"अपना हाल बताओ।"

राजेंद्र—"मैं आजकल रायबरेली में हूँ, और उसी कुर्सी पर बैठा हूँ, जिस पर आपने बिठाया था।"

मामा—"आज मेरे पास आकर क्षमा माँगने की बुद्धि कैसे आई?"

राजेंद्र ने संक्षेप में सारी कथा सुनाई।

मामा—"ओ हो! इतने संकटों में फँसे, पर कभी अपने इस तुच्छ मामा को स्मरण न किया?"

राजेंद्र—"ऐसी बुद्धि होती, तो आप सबको अप्रसन्न ही क्यों करता? और, क्यों संकट आता?"

मामा—"हम सबसे तो क्षमा माँग ली, मेरी बहन और बहनोई से कैसे क्षमा माँगोगे ?"

राजेंद्र—"अब आप ही उनके स्थान पर हैं, उनकी ओर से भी आप ही क्षमा करें।"

मामा—"राजेंद्र ! अब तो तुम बहुत सीधे हो गए। थानेदार न होकर स्कूल-मास्टर बन गए। तुम्हें स्मरण है, मैं इसी लड़की की बड़ी बहन से तुम्हारा ब्याह करा रहा था।"

राजेंद्र—"सब स्मरण है। उसे कैसे भूल सकता हूँ।"

मामा—"ख़ैर, यह अच्छा हुआ कि तुम्हारा साला ब्याहने आया, इससे तुम मान्य के मान्य बन गए, पर वह बात कुछ और ही थी।"

इतने में लड़की का भाई किशोरसिंह सूबेदार साहब को पिलाने के लिये दूध की लस्सी लाया। सूबेदार साहब ने राजेंद्र की ओर संकेत करके कहा—"आपको।"

किशोरसिंह ने गिलास राजेंद्र के सामने किया। उन्होंने कहा—"नहीं, पहले मामाजी को।"

सूबेदार साहब ने कहा—"नहीं, खाने-पीने की वस्तुएँ पहले लड़के लेते हैं। हाँ, पान पहले बड़ों को दिया जाता है।"

जब जलपान से छुट्टी हुई, तो सूबेदार साहब ने किशोरसिंह से कहा—"पहचानते हो, कौन हैं ?"

किशोरसिंह ने ध्यान से देखकर कहा—"कभी देखा तो है, पर याद नहीं आता।"

सूबेदार साहब ने कहा—"मेरा भानजा राजेंद्र है, जिसका ब्याह तुम्हारी बड़ी बहन से मैं करवाता था।"

किशोरसिंह ने प्रेम से नमस्ते करके हाथ मिलाया, और पूछा—"आप यहाँ कहाँ ?"

राजेंद्र उत्तर देने में कुछ झिझके, तो मामाजी ने कहा—"यह श्रीवर के बहनोई हैं। अब तुम्हारे ऊपर इनका डबल हक़ है।"

किशोरसिंह ने राजेंद्र के पैर छुए, और पाँच रुपए भेंट में पेश किए।

राजेंद्र ने कहा—"आप तो रुपए पहले ही दे चुके हैं।"

किशोरसिंह ने कहा—"वे तब के थे, अब ये आपके डबल हक़ के हैं।"

राजेंद्रसिंह ने कहा—"मैं भेंट न लूँगा।"

मामा ने कहा—"लड़के हो। यह जो कुछ तुम्हें दें, थोड़ा है।"

राजेंद्र ने कहा—"मामाजी! वेतन के अतिरिक्त किसी प्रकार का पैसा न लेने का नियम किया है।"

मामा ने कहा—"यह तो संबंधी हैं। भेंट देते हैं, लेनी चाहिए।"

राजेंद्र ने कहा—"मामाजी! नियम कर लिया, सो कर लिया।"

किशोर ने कहा—"मैं ये रुपए आपके नाम से निकाल चुका, इनका क्या करूँ?"

राजेंद्र ने कहा—"नरेंद्र को दे दीजिए।"

किशोर ने कहा—"आपका हक़ उनको कैसे दे दूँ?"

राजेंद्र ने कहा—"आप उन्हें दे दीजिए, वह यथा स्थान पहुँचा देंगे।"

अब बात समझ में आई। किशोर ने रुपए सूबेदार साहब को देकर कहा—"मौसाजी! ब्याह का घर है, मैं भूल जाऊँगा, ये रुपए आप नरेंद्रजी को दे दें।"

किशोर ने जाकर घर में यह बात कही। कृष्णाकुमारी, जिसका ब्याह राजेंद्र के साथ होता था, यह बात सुनकर मुस्किरा दी। कृष्णा का ब्याह एक वकील के साथ हुआ है, और वह बैरिस्टरी पढ़ने

लिये विलायत गए हैं। दो माह पश्चात् लौटेंगे। राजेंद्रसिंह ने मामा से आज्ञा चाही, तो उन्होंने कहा—"और बैठ लो। बहुत दिन बाद मिले हो। यह तो बताओ, कोई काम तो नहीं है। तुम्हारा इंस्पेक्टर जेनरल मेरी फ़ौज का साहब है। ख़ूब जाना-पहचाना है।"

राजेंद्र ने कहा—"मामाजी! अब रिश्वत तो लेनी नहीं, कोई आफ़त पड़ जाय, तो और बात है। एक बात हो सकती है कि सी० आई० डी० में ले लिया जाऊँ, तो इस रोज़ की बमचख़ से बच जाऊँ।"

मामा ने कहा—"अच्छा, मैं साहब से कह दूँगा।"

न्योतनी होकर कलेवे के लिये लड़का चला, तो किशोरसिंह ने राजेंद्रसिंह से भी साथ चलने को कहा। नरेंद्र ने किशोरसिंह की बात का समर्थन किया। राजेंद्र ने सोचा—बाहर बैठकर मामाजी से बात करता रहूँगा। साथ चल दिए। वहाँ पहुँचकर भीतर जाना पड़ा, तो क्या देखते हैं, उसी प्रकार कुर्सियाँ पड़ी हैं। बीच में मेज़ रक्खी है। सब लोग बैठ गए। नरेंद्र ने पहले राजेंद्र को अपने पास कुर्सी पर बिठाया, तब स्वयं बैठे। यद्यपि बहुतों को पहले से अज्ञात था, पर नरेंद्र के इस व्यवहार ने कानाफूसी द्वारा सबको बता दिया कि राजेंद्र श्रीवर के बहनोई हैं। कृष्णाकुमारी मुस्किराती हुई आई, और एक ख़ाली कुर्सी का पिछला भाग हाथ से पकड़कर, पहले ही की तरह, खड़ी हो गई। जब राजेंद्रसिंह ने उसकी तरफ़ देखा, तो उसने कहा—"नमस्ते।"

इन्होंने भी कहा—"नमस्ते।"

कृष्णा ने पूछा—"कहिए, ख़ूब कुशल से रहे?"

राजेंद्र ने कहा—"आप सबकी कृपा।"

कृष्णा ने कहा—"मेरी कृपा याद है?"

राजेंद्र—"ख़ूब याद है।"

कृष्णा—"उस दिन मैंने आपको पसंद नहीं किया था, पर आज मैं पसंद करती हूँ।"

राजेंद्र—"पर आज मैं नापसंद करता हूँ।"

सबसे पहले नरेंद्र हँसने लगा। उसके साथ और भी लड़के तथा बहुत-सी लड़कियाँ हँसने लगीं।

कृष्णा—"तब से मुझमें क्या कमी हो गई, जो आप अब पसंद नहीं करते?"

राजेंद्र—"तब से आपमें कमी न होकर बढ़ती हुई है, इसी से पसंद नहीं करता।"

अब की बार बड़े ज़ोर की हँसी हुई, और कृष्णा झेंप गई। पर फिर हिम्मत बाँधकर कहा—"तो अब कोई सूरत हो सकती है?"

राजेंद्र—"हो सकती है।"

कृष्णा—"वह क्या?"

राजेंद्र—(नरेंद्र की ओर संकेत करके) "यदि यह चाहें, तो?"

कृष्णा—"कैसे?"

राजेंद्र—"यह अपनी बहन से सिफ़ारिश कर दें।"

कृष्णा—"इनकी बहन को तो मैं सात समुद्र पार (अपने पति के पास) भेजूँगी।"

राजेंद्र—"पासपोर्ट नहीं मिलेगा।"

कृष्णा—"क्यों?"

राजेंद्र—"बिना पुलिस की तहक़ीक़ात के पासपोर्ट नहीं मिलता।"

कृष्णा—"तब दो महीने प्रतीक्षा करूँगी।" (यानी दो महीने में मेरे पति आ जायँगे।)

राजेंद्र—"तब तक क़ानून पढ़ रखिए।"

कृष्णा—"एक की पढ़ाई दूसरे के काम नहीं आ सकती?"

राजेंद्र—"नहीं आ सकती, क्योंकि पढ़ाई पेट में न रक्खी जाकर दिमाग़ में रक्खी जाती है।"

नरेंद्र—(हँसकर) "और सुनिएगा?"

कृष्णा—"भाई, आज दारोग़ाजी के हाथ मैदान रहेगा, ऐसा मालूम होता है।"

राजेंद्र—"मैदान तो आप ही के हाथ रहेगा, हम चाहे जितना प्रयत्न करें।"

नरेंद्र—(हँसकर) "जीजाजी! आज तो बड़े बाँके हाथ निकाले।"

राजेंद्र—"नहीं मानतीं, तो फिर क्या करूँ?"

कृष्णा—"तो फिर कब दर्शन होंगे?"

राजेंद्र—"रात को।"

नरेंद्र—(हँसकर) "अब आज आप हार मान लीजिए।"

कृष्णा—"क्यों हार मान लूँ?"

राजेंद्र—"वकील-बैरिस्टर हारकर भी हार नहीं मानते।"

कृष्णा—"और पुलिसवाले हार को भी जीत मानते हैं।"

इतने में किसी ने छत पर से पुकारा—"कृष्णा!"

कृष्णा छत पर चली गई। इधर कलेऊ का कार्य प्रारंभ हुआ। सबसे पहले एक अँगूठी राजेंद्र को दी गई। राजेंद्र ने नरेंद्र की उँगली में पहना दी। फिर नरेंद्र को जो सामान दिया गया, वह एक छोटी-सी मेज़ पर सजाया गया। कलेऊ का कार्य समाप्त होने को आया। पर कृष्णा न आ सकी। उसने ऊपर से ही राजेंद्र से कहा—"काम है, आती हूँ, ठहरिए।"

राजेंद्र—"काम से पीछा छुड़ाना बहुत कठिन है।"

कृष्णा—"पुलिसवालों से पीछा छुड़ाना उससे भी कठिन है।"

राजेंद्र—"आपको काम है, इसलिये आप नीचे आएँगी कि मैं ही ऊपर आऊँ?"

(नरेंद्र खिलखिलाकर हँस दिया, और मंडली भी ख़ूब हँसी।)

कृष्णा—"अच्छा, आप बहुत ज़ोरों पर हैं।"

आज कृष्णा और दारोग़ाजी की ख़ूब छूटें हुईं। चलते समय राजेंद्र ने कृष्णा से क्षमा माँगी। दो-तीन दिन बारात का ख़ूब सत्कार हुआ। मामाजी से राजेंद्र ने कई बार भेंट की। जब मामाजी को प्रसन्न देखा, तो कहा—"एक बार रायबरेली पधारकर दर्शन दीजिए।"

"मामा ने कहा—"अच्छा बेटा, आऊँगा।"

बारात ख़ुशी-ख़ुशी बिदा हुई। बिदा के समय किशोरसिंह ने कहा—"दारोग़ाजी! पहली बार जब आप पधारे थे, तब जो कुछ भी हुआ था, वह सब मेरी ही योजना थी। अलीगढ़ से मैं भाई रामसिंह के साथ बहुत दुखी आया, और आपकी बिना बात की ज़िद का बदला यों चुकाया। अब आप मेरे सब प्रकार पूज्य हैं। मैं क्षमा चाहता हूँ।"

राजेंद्र ने किशोरसिंह को छाती से चिपटाकर कहा—"आप भाई हैं। मुझे उन दिनों उन्माद-सा था, जिसके कारण मैंने आप क्या, सभी को अप्रसन्न किया।"

बारात घर लौट आई, तब शांती ने जाना कि इस बहू की बड़ी बहन से दारोग़ाजी का ब्याह होता था। दारोगाजी तो दूसरे दिन चले गए, पर कह गए—नरेंद्र के साथ भेज दीजिएगा, मुझे छुट्टी नहीं मिलेगी।"

दारोगाजी डॉक्टर गोपाल से मिलकर रायबरेली चले आए।

[२१]

डॉक्टर गोपाल का कार्य ख़ूब चल रहा है। उससे भी अधिक तेज़ी से जागेश्वरी का काम चल रहा है। जब दोनों में से कोई बाहर जाता है, तो दूसरा सारा काम सँभालता है। इसी बीच समाचार-पत्रों से पता चला कि कलकत्ते में दंगा हो गया। डॉक्टर गोपाल ने कांग्रेस के अधिकारियों से मिलकर तय किया कि कलकत्ते को एक सहायक दल भेजा जाय, जिसमें डॉक्टर गोपाल भी होंगे। बड़ी प्रसन्नता से प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। कलकत्ता-कांग्रेस-कमेटी, मारवाड़ी-रिलीफ़-सोसाइटी, हिंदू-महासभा, रेडक्रास-सोसाइटी आदि कई संस्थाओं से लिखा-पढ़ी करके यह पंद्रह आदमियों का दल कलकत्ते जाने को तैयार हुआ। जिस समय जागेश्वरी को यह समाचार मिला, उसने भी सोलहवाँ अपना नाम पेश किया। डॉक्टर गोपाल ने समझाया—"तुम अबला हो, कलकत्ते में जान का ख़तरा है, तुम्हें नहीं जाना चाहिए।"

जागेश्वरी ने कहा—"जान का ख़तरा है, यह जानकर भी आप हथेली पर जान रखकर जा रहे हैं, और मुझे जाने से रोकते हैं?"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"न-जाने किस समय क्या बीते, इसलिये तुम्हारा चलना ठीक नहीं।"

जागेश्वरी ने कहा—"इसीलिये आपका जाना भी ठीक नहीं। आप तो आग में कूदने जा रहे हैं, और मुझे फूलों की सेज पर आराम करने को कह रहे हैं। आप वहाँ होंगे, यहाँ मेरी क्या

दशा होगी, इस पर विचार नहीं किया ? मैं चलूँगी, और ज़रूर चलूँगी।"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"यहाँ रहोगी, तो मुझे वहाँ बड़ा इतमीनान रहेगा। यहाँ के रोगियों की देख-भाल ठीक होगी। माजी को भी संतोष रहेगा।"

"आप वहाँ होंगे, मुझे एक-एक पल वर्ष के समान बीतेगा। काँपते हाथों से अख़बार लूँगी, हर समय बेइतमीनानी में रहूँगी, तब क्या रोगियों को देखूँगी, और क्या माजी को संतोष दूँगी।" जागेश्वरी ने उत्तर में कहा।

डॉक्टर गोपाल ने अपने दलवालों से यही बात कही। बड़े असमंजस का विषय था। न हाँ करते बनती थी, न नाहीं। सोचा गया, कई व्यक्ति चलकर डॉक्टर जागेश्वरी से प्रार्थना करें।

डेप्यूटेशन डॉक्टर जागेश्वरी के पास पहुँचा। बातचीत हुई।

एक सदस्य—"श्रीमतीजी का चलना हम लोगों के कार्य में रुकावट डालनेवाला होगा।"

जागेश्वरी—"रुकावट डालनेवाला न होगा, वरन् सहायता पहुँचानेवाला होगा। एक के बदले आपको दो डॉक्टर मिल जायँगे।"

दूसरा सदस्य—"वहाँ हर समय प्राणों का भय है। ऐसे संकट-काल में...।"

जागेश्वरी—"तब डॉक्टर साहब के साथ आप लोग क्यों जाते हैं ? घर बैठिए।"

सदस्य—"डॉक्टर साहब को ख़तरे के समय पीछे कर दिया जायगा।"

जागेश्वरी—"ख़तरे के समय जो व्यक्ति पीछे रहे, उसे नहीं जाना

चाहिए। पर आप लोग याद रक्खें, डॉक्टर साहब पीछे रहनेवाले व्यक्ति नहीं हैं—

यह कार के नग़मे गाते हैं, बेकार तराना क्या जानें ?
आज़ाद हिंद के सैनिक हैं, यह पीठ दिखाना क्या जानें ?"

सदस्य—'शाबाश देवी ! सचमुच डॉक्टर साहब ऐसे ही हैं। पर वहाँ आप-जैसी कोमलांगी अबलाओं की आवश्यकता नहीं। वहाँ तो डॉक्टर साहब-जैसे आज़ाद हिंद के सैनिकों की ही आवश्यकता है।"

जागेश्वरी—"मैं उसी आज़ाद हिंद के सैनिक का आधा अंग हूँ। आप मुझे कोमलांगी अबला कैसे कहते हैं ? मैं 'वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि।' हूँ। जब जैसा समय पड़ेगा, तब तैसी बन जाऊँगी। क्या आज़ाद हिंद के सैनिकों में लक्ष्मीबाई का कोई स्थान नहीं ? हमारे भाइयों और बहनों के गले काटे जा रहे हैं, भाई भाई के ख़ून का प्यासा हो रहा है, मा-बहनों की लाज सुरक्षित नहीं है। मेरे जीवन-सर्वस्व को आप अपने साथ लिए जाते हैं, और मुझे कोमलांगी कहकर छोड़ना चाहते हैं। मैं चलूँगी, और ज़रूर चलूँगी। आप देखेंगे, मैं अपनी रक्षा करने में कहाँ तक समर्थ होती हूँ।"

दल के सदस्यों से कोई उत्तर न बन पड़ा। विवश होकर पंद्रह के बदले सोलह की मंडली बन गई, और रेल पर सवार होते ही इनके कलकत्ते पहुँचने का तार दे दिया गया। स्टेशन पर पहुँचते ही इनसे स्वागत करनेवाला दल आ मिला। अभी अभीष्ट स्थान पर न पहुँचे थे कि मार्ग में ही मार-पीट होते देखी। लॉरी खड़ी करके सब लोग उतर पड़े। पहले गुंडों से मोर्चा लिया। जागेश्वरी और ड्राइवर को लॉरी में ही छोड़ दिया गया था। ड्राइवर तो बैठा रहा, पर मार-पीट होते देखकर जागेश्वरी से न रहा गया। उतरकर झपटी; ड्राइवर 'ठहरिए, ठहरिए' कहता ही

रहा। जागेश्वरी ने झपटकर एक गुंडे का हाथ पकड़ा, और झटका देकर काँता छीन लिया। फिर कहा—"डॉक्टर हूँ, ज़ख़्म अच्छा करने आई हूँ, ज़ख़्म करने नहीं आई, नहीं तो ऐसा काँता मारती कि दो हो जाता।"

गुंडा तो गुंडा ही ठहरा, काँता छिनते ही शेर से बकरी बन गया। अभी दंगा शांत न हो पाया था कि पुलिस-लॉरी आ गई। गुंडे भाग गए, पर जागेश्वरी ने उस गुंडे को न भागने दिया। वह मय काँते के पुलिस के सिपुर्द कर दिया गया। अब जागेश्वरी घायलों की मरहम-पट्टी में, डॉक्टर गोपाल के साथ, जुट पड़ी। एक को छोड़कर किसी घायल का घाव बड़ा न था। उसे लॉरी में डालकर बाक़ी से कह दिया—"दूसरे दिन आठ बजे आकर मरहम-पट्टी की जायगी। आप लोग अपने घरों में सचेत रहें।"

जागेश्वरी के कर्तव देखकर मंडलीवाले चकित रह गए। जो सज्जन इस मंडली को लेने आए थे, उन्होंने सगर्व कहा—"आज हमें ऐसी ही देवियों की ज़रूरत है, जो अपनी ही रक्षा करने में समर्थ न हों, वरन् दूसरों का भी हाथ बँटावें। हम लोग बीच-बचाव करते रहे, पर देवीजी की तरह किसी गुंडे से हथियार छीनकर उसे गिरफ़्तार न करा सके। देवी! आज कलकत्ते को ऐसी ही देवियों की ज़रूरत है।"

पुलिसवालों को इस दल के आने की सूचना दे दी गई थी, अतः सशस्त्र लॉरी पर सवार होकर यह दल घायलों की मरहम-पट्टी तथा अन्य सेवा-शुश्रूषा करने के लिये निकला। कई स्थानों पर घर-घर जाकर मरहम-पट्टी की। जाति-भेद इस मंडली को छू न गया था। दुखी की सहायता, घायल की दवा और शुश्रूषा ही इस मंडली का मुख्य उद्देश्य था। सबेरे आठ बजे ये लोग साधारण जलपान करके निकलते, और कभी दो बजे, कभी तीन बजे लौटकर खाना

खाते। रात-दिन की दौड़-धूप और थकान से इस मंडली के तीन आदमी बीमार हो गए। डॉक्टर गोपाल तो ठहरे फ़ौजी आदमी, उन्हें खाने-पीने या सोने की क़तई परवा न थी; हर समय काम में जुटे रहना ही उन्हें इष्ट था।

एक बार रात को आठ बजे आकर ये लोग खाना खाने बैठे ही थे कि फ़ोन से ख़बर मिली कि अमुक मुहल्ले में दंगा हो गया; तुरंत सहायता भेजी जाय। एक तो रात, दूसरे, कलकत्ते का लोम-हर्षण दृश्य! पर भोजन छोड़कर ये लोग लॉरी में जा बैठे। एक सदस्य ने जागेश्वरी से कहा—"हम लोग अभी आते हैं, आप ठहर सकती हैं। जागेश्वरी लॉरी में बैठ गई, और कहा—"जब इटावा में ही नहीं ठहरी, तो यहाँ ठहरने का क्या प्रश्न? आग जल रही है, उसमें ठहरना कैसा?"

मौक़े पर पहुँचकर देखा, हिंदू-मुसलमान, दोनों का रक्त गुंडों ने एक साथ बहाया है! घायल पड़े कराह रहे हैं! निरपराध राह-चलतों पर आक्रमण किया गया है! सबकी यथायोग्य दवा-दारू और सेवा-शुश्रूषा करके लॉरी रात को ग्यारह बजे लौट रही थी कि रास्ते में एक स्थान पर और एक कांड हो गया। सब लोग उतर पड़े, और भूखे-प्यासे, निद्राभिभूत सेवा-कार्य में जुट पड़े। लॉरी पर आहतों को भेज दिया। मंडली रात के दो बजे सड़क पर, उस सुनसान श्मशान में, एक घंटे खड़ी रही। पल-पल पर यह शंका हो रही थी कि कहीं गुंडों का बड़ा झुंड न आ जाय। देवी जागेश्वरी कहती थीं—"गुंडों का आना भाग्य पर न छोड़कर हम लोगों को अपने कर्तव्य पर छोड़ना चाहिए।"

ये ही बातें हो रही थीं कि लॉरी आ गई, और ये लोग सवा तीन बजे कैंप में पहुँचे, और भूखे ही सो गए।

दूसरे दिन ज़रा देर से सोकर उठे, जलपान किया, और फिर

चल दिए। एक होटल को गुंडों ने घेर रक्खा था। लॉरी को आता देख वे तितर-बितर हो गए, पर उन्होंने होटल की कसर लॉरी से निकाली। ईंट-पत्थरों से लॉरी की पूजा की। शीशा टूट गया। वे लोग छिपकर यह कार्य कर रहे थे, इसलिये उन पर गोली न चलाई जा सकी। इस दल के कई सदस्य घायल हुए। डॉक्टर गोपाल की खोपड़ी में एक कंकड़ लगा, जिससे ख़ून आ गया। डॉक्टर जागेश्वरी के बाएँ हाथ की उँगली में चोट आई। अन्य सदस्य भी घायल हुए। सबकी मरहम-पट्टी हुई। डॉक्टर जागेश्वरी ने डॉक्टर गोपाल की मरहम-पट्टी की, क्योंकि वह अपना सिर स्वयं न देख सकते थे। और, उन्होंने डॉक्टर जागेश्वरी की उँगली में पट्टी बाँधी। इस प्रकार सेवा करनेवाले परस्पर सेवा के आकांक्षी हो गए। तीन-चार दिन तक इन लोगों को कष्ट रहा, इसके बाद सब ठीक हो गए। पर, इन लोगों ने अपना काम एक दिन के लिये भी नहीं छोड़ा। दस-बारह दिन तक कलकत्ते की सेवा करके जब वहाँ कुछ शांति स्थापित हुई, तो ये लोग घर को चले। कुशल-मंगल का तार चलने से पहले ही दे दिया। मंडली में कोई ऐसा न था, जिसे कुछ-न-कुछ क्षति न पहुँची हो। ताज़े-तगड़े गए थे, और आधे बीमार बनकर लौटे। किंतु जिन लोगों की सहायता को गए थे, उन्होंने ख़ूब धन्यवाद दिया। सचमुच इन लोगों ने रात-दिन एक करके सेवा की।

इटावा लौटने पर लोगों ने सादर स्वागत किया। धन्यवाद दिए। अभी यह मंडली भले प्रकार अपने कार्यों में लग भी न पाई थी कि समाचार-पत्रों में पूर्वी बंगाल के भीषण हत्याकांड का वर्णन छपा। दूसरे दिन मारवाड़ी-रिलीफ़-सोसाइटी का पत्र आया कि आप लोगों की सेवा की पूर्वी बंगाल में आवश्यकता है, पधारिए। अपने आप जाना या न जाना और बात है, और दूसरे का बुलावा

और बात है। इस बुलावे से यह बात स्पष्ट हो गई कि इस दल के कार्य को लोगों ने बहुत पसंद किया। मंडली की बैठक हुई। दो सज्जन अभी अपने स्वास्थ्य की कमी को पूरा न कर पाए थे। एक सज्जन की रिश्तेदारी में ब्याह था, अतः इन तीनों को छोड़ दिया गया। डॉक्टर गोपाल तो मंडली के प्राण थे। डॉक्टर जागेश्वरी किसी बात में डॉक्टर गोपाल से पीछे रहना न चाहती थीं। कैसा ही भोजन मिला, उन्होंने उसे प्रेम से पा लिया, कैसा ही संकट आया, बड़े हर्ष से सहन किया। कभी माथे पर शिकन नहीं आई। अतः उन्हें ले चलने में मंडली का परम गौरव था। तार द्वारा कलकत्ते को आने की तारीख़ की सूचना दे दी गई। जब डॉक्टर गोपाल और जागेश्वरी ने मा को अपने जाने की सूचना दी, तो माजी का पारा गरम हो गया। 'किसी को न जाने दूँगी' सुनकर डॉक्टर गोपाल और जागेश्वरी का मुँह सूख गया।

डॉक्टर गोपाल ने बड़ी विनय से पूछा—"माजी, क्या बात है, जो आप हम लोगों को न जाने देंगी?"

माजी ने कहा—"तुझे क्या ख़बर कि जिन दिनों तुम दोनो कलकत्ते में रहे, मुझ पर क्या बीती? कितने दिन बिना अन्न और कितनी रातें भीगी पलकों से बीती हैं। किस कठिन तपस्या से तुझे पाला, और किस अरमान से मैंने बहू पाई, अतः अब मैं दो में से एक को भी न जाने दूँगी।"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"मा! मैंने पहले ही कह रक्खा था कि मुझे तेरी और भारत-माता, दोनो की सेवा करनी है। उस वचन से तू क्यों मुकरती है?"

मा ने कहा—"यहाँ रहकर सेवा नहीं हो सकती? रुपया भेज दे, सामान भेज दे, यह भी तो सेवा है।"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"यह तो अत्यंत निम्न कोटि की सेवा

है। वहाँ तो सबसे पहले तन-सेवा की आवश्यकता है। आदमी न होंगे, तो दवा-दारू कौन करेगा, सामान कौन बाँटेगा? इसलिये वहाँ तन, मन और धन, तीनों की आवश्यकता है। पर तन पहले चाहिए।"

मा ने कहा—"जो जी में आए, सो कर। पर मैं बताए देती हूँ, अब की बार तुम दोनों लौटकर मुझे न पाओगे।"

गोपाल ने कुछ कहना उचित न समझा, और मंडली में बात पेश हुई। तय हुआ कि चलकर माजी को समझाया जाय।

मंडली माजी की सेवा में उपस्थित हुई। माजी जानती थीं, ये लोग किसलिये आए हैं। उनके आते ही कहा—"मैं आप लोगों का मतलब जानती हूँ, पर व्यर्थ समय नष्ट करना ठीक नहीं।"

मंडली के मुखिया ने कहा—"माजी! देश पर संकट आया है, हिंदू-जाति को गुंडों ने नेस्त-नाबूद करने की ठान ली है, धन लूट लिया गया है, मनुष्य मार डाले गए हैं, मा-बहनों का सतीत्व हरण किया जा रहा है, लोग बुरी तरह घर छोड़-छोड़कर भाग रहे हैं। क्या उनकी सहायता करना हम लोगों का धर्म नहीं?"

माजी ने कहा—"क्यों नहीं। आप लोग शौक़ से उनकी सहायता कीजिए, पर हम लोगों को अपनी सहायता आप करने दीजिए। आज से बीस-पचीस वर्ष पहले ज़मींदार के अत्याचारों से मुझे नेस्त-नाबूद करने की ठानी गई, मेरा धन लूट लिया गया, गोपाल के पिता को अप्रत्यक्ष रूप से मार डाला गया, मेरे सतीत्व-हरण की गर्हणीय दुश्चेष्टा की गई। मैं बुरी तरह घर-बार छोड़कर इस—अपने गोपाल—गुदड़ी के लाल को लेकर भाग आई। किसी ने—सगे जेठ-देवर और भाई-भतीजों ने—सहायता का नाम न लिया। इसलिये मैं तो सब कुछ सह चुकी, अपने ऊपर आपकी बताई सारी दुर्घटनाएँ झेल चुकी। आप लोग जाइए, और हमें क्षमा कीजिए।"

मंडली के मुखिया ने कहा—"डॉक्टर साहब को आज्ञा दे दीजिए। यदि ख़ुशी से राज़ी हो, तो बहू को रख लीजिए।"

माजी ने आवेश में आकर कहा—"गोपाल आधी दुनिया का चक्कर लगा आया, ख़ूब सेवा कर चुका, अब उसे छोड़ो। संसार में मैंने यही एक वस्तु पाई है। मेरे जीवन का सब कुछ वही है। उसे कैसे जाने को कह दूँ? मैं कह चुकी—मेरा गोपाल 'गुदड़ी का लाल' है। उस प्राणों के प्राण को आप माँगते हैं। फिर आप बहू की बात कहते हैं। मेरी बहू हज़ारों-लाखों अरमानों के बाद मुझे मिली है। और, बहू कैसी है? डॉक्टरी-पास, चार पैसे पैदा करनेवाली, मुझ मज़दूरनी के घर से दसगुने अच्छे घर में पली हुई। वह बहू डॉक्टरी करती है, छुट्टी पाते ही रसोई-घर सँभालती है, शाम को मेरे पायताने बैठकर मेरी देह दाबती है। उस गुलाब के फूल-सी कोमल बहू को आग में अपने हाथों झोंक दूँ।"

मंडली के मुखिया ने कहा—"माजी! आपका कहना सर्वथा सत्य है। बताइए, ऐसी त्याग और तपस्या की मूर्ति को छोड़कर हम सेवा की झोली किसके आगे फैलाएँ? जिसने अपने पुण्यों के बल से डॉक्टर गोपाल-जैसा पुत्र, डॉक्टर जागेश्वरी-जैसी बहू पाई, उसे छोड़कर सेवा के लिये किसके आगे हाथ पसारें? जो कष्ट सहने का अभ्यासी है, वही कष्ट सह सकता है। मख़मली गद्दों पर लेटने के आदी क्या सेवा-कार्य में आगे बढ़ेंगे? तब कौन आगे आएगा? रात-दिन मेहनत-मज़दूरी करके पेट न भर पानेवाले अपढ़, अशिक्षित लोग? नहीं, कभी नहीं। मा, आज भारत-माता आपके अंचल की ओर अश्रु-भरे नेत्रों से देख रही है। आज दानवी शक्ति ने दैवी शक्ति पर हल्ला बोल दिया है। आज देवासुर-संग्राम-सा हो रहा है। मा! बताओ, हम किससे सेवा की भिक्षा माँगें?

डॉक्टर गोपाल-सा गुदड़ी का लाल पैदा करके सचमुच तुम्हारी कोख धन्य हुई है। डॉक्टर जागेश्वरी-सी बहू पाकर यथार्थ में आपने सास-पने को उज्ज्वल तिलक लगाया है। ऐसी परमपूज्या. सती-साध्वी, जीवन की कठोर तपस्विनी को छोड़कर भारत-माता किसके सामने सेवा की भीख माँगे ? मा, तुम्हें यह भिक्षा देनी पड़ेगी, और भारत के इतिहास में ऐसी ही माताओं के नाम स्वर्णाक्षरों में लिखे जायँगे। हज़ारों मनुष्य नित्य कीट-पतंगों की भाँति मरते हैं, पर उन्हें कोई नहीं जानता। माजी ! दुर्गा-माता का आह्वान है, देश की पुकार है, संकट का समय है। यह दिन नहीं रहेगा, पर बात कहने को रह जायगी कि माजी के सपूत डॉक्टर गोपाल और सेवा-भाव में अग्रणी उनकी बहू डॉक्टर जागेश्वरी ने कलकत्ते के लोम-हर्षण कांड में, पूर्वी बंगाल की जलती आग में अपने को होमकर भारत-माता और मनुष्य-जाति की अनुपम सेवा की। मा, हम लोगों को हर्ष के साथ बिदा दो, विजय का तिलक लगाओ, और अपने आशीर्वाद के साथ पूर्वी बंगाल भेज दो।"

इतना कहकर मुखिया ने अपनी टोपी उतारकर माजी के पैरों पर रख दी। 'सौ तक गिनती, पैरों तक विनती'वाली लोकोक्ति का प्रत्यक्ष प्रदर्शन देखकर माजी का हृदय पिघल उठा। बोलीं—"भेजूँगी, पर एक शर्त पर।"

मुखिया ने कहा—"वह शर्त क्या ?"

माजी ने कहा—"मैं भी साथ चलूँगी।"

मुखिया ने कहा—"क्यों ?"

माजी बोलीं—"जो सेवा होगी, करूँगी। साथ ही हम सब एक साथ मरेंगे, और एक साथ जिएँगे। मेरे प्राण वहाँ रहें, और शरीर यहाँ रहे, यह मैं सहन न कर सकूँगी।"

मुखिया ने कहा—"अच्छा, डॉक्टर साहब से पूछ लूँ।"

डॉक्टर गोपाल ने सुनकर कहा—"बड़ी विकट समस्या है। पर मुझे अपनी ओर से कोई इनकार नहीं।"

जागेश्वरी से पूछा गया। उसने कहा—"मैं घायलों और रोगियों का काम करूँगी, या माजी को सँभालूँगी। फिर, यहाँ इतना बड़ा घर, भरी-पुरी गृहस्थी किसे सौंप जाऊँगी?"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"गृहस्थी की रत्ती-भर भी चिंता न करो। जिसने यह सब कुछ दिया है, वही फिर देगा।"

मुखिया ने कहा—"मैं यहाँ रहनेवाले स्वयंसेवकों को घर की रखवाली सौंप दूँगा।"

मंडली तैयार होकर चली। स्टेशन पर एक घंटा पहले पहुँच गई। पहले कलकत्ते को तार दिया गया, फिर इटावा-वासियों ने मंडलीवालों के लिये शुभ कामनाएँ करके, पाँच हज़ार रुपया नक़द इस मंडली को देकर मरहम-पट्टी का सामान तथा कुछ अन्य आवश्यक सामग्री दी। जो स्वयंसेवक जा रहे हैं, उनके घरवालों की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ली। रोली का तिलक मस्तक पर लगा-कर अक्षत लगाए, और फूल-माला पहनाकर सबको सहर्ष रेल में बिठाया।

[२२]

कलकत्ते पहुँचकर इस मंडली ने अपने को शरणार्थी-सहायक दल में सम्मिलित कर दिया। पूर्वी बंगाल से बड़े ही रक्त-रंजित समाचार आ रहे थे। सरकार से भी लिखा-पढ़ी की, और भगवान् का नाम लेकर पूर्वी बंगाल को चल दिए। जिस ज़िले में इन्हें काम करना था, वहाँ चारो ओर लूट, अग्नि और मार-काट का भीषण दृश्य था। शरणार्थियों के कैंप में पहले तो थोड़े ही मनुष्य थे, पर नित्य संख्या में वृद्धि हो रही थी। बंगाल-गवर्नमेंट ने इन शरणार्थियों को किसी प्रकार की भी सहायता न दी। स्थान, अन्न, वस्त्र और सबसे बढ़कर सुरक्षा का आश्वासन उनको चाहिए था। ये लोग और तो सब कुछ दे सकते थे, पर सुरक्षा का प्रश्न बड़ा टेढ़ा था। स्वयं इस मंडली को ही रक्षा प्राप्त न थी। यदि इस अपरिचित क्षेत्र में इनको कोई आश्वासन था, तो ज़िले के ईसाई कलेक्टर का। बेचारा दिन में और रात को भी एक-दो बार कैंप में आता और कष्ट की बात पूछता था। पर हर समय, विशेषकर रात को, गुंडों के आक्रमण का भय लगा रहता था।

डॉक्टर गोपाल की मंडली में बीस व्यक्ति थे—दो स्त्रियाँ और अठारह पुरुष। उनके सिपुर्द डॉक्टरी के अतिरिक्त और भी काम थे। जो मंडली इन लोगों के साथ कलकत्ते से आई थी, उसके स्वयंसेवक बँगला-भाषा जानते थे। किंतु इन बीसों में से कोई भी बँगला न जानता था, वरन् आठ व्यक्तियों को छोड़कर शेष अँगरेज़ी-भाषा भी न जानते थे। अतः डॉक्टर जागेश्वरी को स्त्री-

रोगियों का काम तथा स्त्रियों की सेवा दी गई। माजी को अपनी मंडली के लिये भोजन बनाने का काम सौंपा गया। एक स्वयंसेवक की सहायता से माजी दोनो समय बीसों आदमियों को भोजन खिला देतीं, साथ ही जो समय बचता, उसमें दूसरे काम करती थीं। काम तो सभी करते थे, पर माजी का काम जितनी तेज़ी से और ठीक समय पर होता था, उतना बहुत कम लोगों का होता था। रात को ग्यारह बजे सोना नसीब होता था। सबेरे साढ़े चार बजे उठकर, नित्य-कर्म से निपटकर सब लोग काम में लग जाते थे। डॉक्टर गोपाल फ़ौज के साथ रह चुके थे, अतः उन्हें कुछ भी असुविधा न हुई। धरती पर लेटने के अभ्यासी थे। डॉक्टर जागेश्वरी काम में तो किसी से पीछे न थी, पर धरती का लेटना और थर्ड क्लास भोजन उसे न रुचता था। पर उसने कभी किसी से कोई शिकायत न की।

देश के चोटी के नेताओं का आगमन प्रारंभ हुआ। आचार्य कृपलानी आए, और कैंप का प्रबंध देखकर बहुत प्रसन्न हुए। इतने दूर देश में आकर सेवा करने के भाव की, इटावा-मंडली की विशेष रूप से प्रशंसा की। डॉक्टर जागेश्वरी को अपने पति के साथ काम करने की बधाई देते हुए कहा—"आप अपने पति की सच्ची पत्नी हैं।"

इसके बाद महात्मा गांधी के आने की ख़बर हुई। पर बंगाल-गवर्नमेंट के किसी अधिकारी ने इन कैंपों के न तो दर्शन किए, न कोई सहायता दी। कभी-कभी ख़बर आ जाती थी कि सरकार प्रबंध कर रही है, पर क्या प्रबंध कर रही है, यह ज्ञात न था। पुलिस के जो सिपाही रक्षा के लिये नियत थे, कैंपवालों का उन पर पूरा विश्वास न था, बल्कि वे तो यहाँ तक कह बैठते थे कि यदि कलेक्टर साहब इतनी खोज-ख़बर न रक्खें, तो ये लोग न-जाने क्या कर बैठें।

महात्माजी अपनी मंडली के साथ पधारे। कार्यकर्ता यदि घंटे-दो घंटे अपने काम को स्थगित कर दें, तो कैंप को बहुत देर से भोजन मिले, तथा अन्य अनेक असुविधाएँ उत्पन्न हो जायँ। सारा कैंप मैशीनरी की तरह काम करता था। चावल मिल गए, तब तो ग़नीमत थी, यदि धान मिले, तो कूटने में बहुत समय लग जाता था। पर मजबूरी का ही नाम तो संतोष है। महात्माजी ने अपनी नोकीली आँखों से कार्यकर्ताओं के कार्य का सूक्ष्म निरीक्षण किया। जिस स्थिरता से डॉक्टर गोपाल की मा को चौके का काम सँभालते उन्होंने देखा, उसकी प्रशंसा की, और कहा—"कस्तूर बा भी रसोई के कार्य में ऐसे ही दत्तचित्त होती थीं।"

डॉक्टर जागेश्वरी की फुर्ती को देखकर कहा—"तुम एक दिन डॉक्टर सुशीला नायर बन जाओगी।"

डॉक्टर गोपाल से कहा—"तुम आज़ाद हिंद के सैनिक हो, अतः तुम्हें प्रशंसा चाहिए ही नहीं। बताओ, तुम्हें यहाँ क्या कष्ट है?"

डॉक्टर गोपाल ने कहा—"आज़ाद हिंद के सैनिक को कष्ट से कोई संबंध नहीं होता। वह तो रात-दिन काम करने ही को बना है।"

महात्माजी ने फिर पूछा—"कोई खटकनेवाली बात तो नहीं है?"

डॉक्टर गोपाल ने विनम्र होकर कहा—"बापू! केवल एक पक्ष की सेवा करने का ही सुअवसर प्राप्त होता है, यही खटकनेवाली बात है। कलकत्ते में मैं हिंदू-मुसलिम आदि वर्गीकरण के बिना ही सबकी सेवा करता था, पर यहाँ केवल एक पक्ष ही की सेवा का अवसर मिलता है।"

बापू ने हँसकर कहा—"अच्छा, इस कैंप के आदमी जब अपने-अपने घर चले जायँगे, तब आप दूसरे पक्ष की सेवा बिहार में कर सकेंगे।"

एक स्त्री को एक मुसलमान गुंडे ने ब्याह करके ज़बर्दस्ती घर में रख लिया था। श्रीमती सुचेता कृपलानी उसे बुला लाईं। महात्माजी से उसने रो-रोकर जो दशा वर्णन की, उसे सुनकर बहुतों के आँसू आ गए। कुछ के चेहरों पर क्रोध के भाव प्रदर्शित होने लगे। महात्माजी ने उससे कहा—"बेटी! दुःख न करो। तुम्हारे इन आँसुओं से गुंडों के घर बह जायँगे, धर्मराज का आसन डोल उठेगा। बस, बदले की भावना को हृदय में स्थान मत देना।"

महात्माजी के समझाने-बुझाने तथा शांत कमेटियों के उद्योग से कैंप के लोग घर जाने लगे। कैंप का बोझ हलका होते ही सबसे पहले डॉक्टर गोपाल की पार्टी को वहाँ से जाने की आज्ञा मिल गई। रेल से ये लोग कलकत्ते को रवाना हुए। आज माजी ने रेल के पटरे पर बहू को गोद में लिटाकर कहा—"सो जाओ।" ये लोग काम में इतने व्यस्त थे कि थककर चूर हो जाते थे। आज जागेश्वरी ने सास की जाँघ पर सिर रखकर सुख की नींद ली। डॉक्टर गोपाल जैसे बैठे थे, वैसे ही पीठ को गाड़ी की बेंच के तकिए से लगाकर एक झपकी ले ली। अन्य स्वयंसेवक भी निद्रा-देवी की गोद में सो रहे थे कि एक गुंडा छुरा लेकर अंदर घुसा। उसने चारो ओर एक दृष्टि फेंकी। माजी ने झपटकर उसके हाथ से छुरा छीन लिया। अब वह माजी को लिपट गया, और दोनो उलझकर एक स्वयंसेवक के ऊपर गिरे। वह जागा, और दूसरों को जगाया। उन्होंने गुंडे को पकड़ा, और अगले स्टेशन पर मय छुरे के पुलिस के सिपुर्द कर दिया। यदि माजी जागती न होतीं, तो न-जाने क्या अनर्थ हो जाता।

मार्ग की कठिनाइयों को पार करके यह दल कलकत्ते पहुँचा। अब भी कलकत्ते में पूर्ण शांति न थी। एक दिन ठहरकर दूसरे दिन ये लोग बिहार की सरकार को तार देकर पटना पहुँचे। वहाँ

से शरणार्थी-शिविरों में गए। एक शिविर का बोझ उठा लिया। और बिना किसी भेद-भाव के खूब सेवा-शुश्रूषा की। कलकत्ते तथा पूर्वी बंगाल के अनुभव से इन लोगों ने इतना अच्छा काम किया कि दूसरे शरणार्थी-कैंपों ने इनकी पद्धति का अनुकरण किया। बिहार-सरकार ने इन लोगों के कैंप का सारा व्यय अपने सिर लिया, तथा प्रत्येक प्रकार की सुविधा दी। विशेषकर सुरक्षा का ऐसा सुंदर प्रबंध था कि पत्ता न हिलता था। इनके कार्य से प्रसन्न होकर बिहार-सरकार ने इन लोगों के लिये यू० पी०-सरकार को धन्यवाद दिया। यू० पी० सरकार ने इन लोगों को प्रोत्साहन देकर लिखा—"आपने अपनी सेवा से यू० पी० [illegible]ौरव बढ़ाया है। आज तो हमको आपकी सेवा की आवश्यकता नहीं, पर जब होगी, हम आपकी सेवा से लाभ उठाएँगे।"

मंडली के इटावा पहुँचने पर इटावा-वासियों ने प्रसन्नता-पूर्वक सादर स्वागत किया। डॉक्टर गोपाल को अधिक धन्यवाद दिया गया।

[२३]

दारोग़ा राजेंद्रसिंह का तबादिला सी० आई० डी० में हो गया, और उन्हें कानपुर में जगह दी गई। उन्होंने बनियों के मुहल्ले में एक साधारण घर किराए पर ले लिया। उसमें नल, पाख़ाना, बिजली के अतिरिक्त दरवाज़े पर अच्छी-सी बैठक है। बैठक में दारोग़ाजी के कपड़े तथा अन्य आवश्यक सामग्री रहती। बैठक के तीन दरवाज़े सड़क की ओर हैं, पर उन दरवाज़ों को खोलने का अवसर बहुत कम आता है। बग़ल के दालान में एक दरवाज़ा है, इसमें होकर बाहर और भीतर दोनों ओर जा सकते हैं। इसी दरवाज़े का सबसे अधिक उपयोग होता है। पड़ोसियों से मिलना-जुलना बहुत कम होता है। एक दिन एक पड़ोसी से राजेंद्र की अकस्मात् भेंट हो गई। उसने पूछा—"आप इस घर में कब से रहते हैं?"

राजेंद्र—"थोड़े दिन से।"

पड़ोसी—"कभी मिलते नहीं?"

राजेंद्र—"छुट्टी नहीं मिलती।"

पड़ोसी—"क्या काम करते हैं?"

राजेंद्र—"चाँदी का सट्टा।"

पड़ोसी—"आजकल बाज़ार कैसा चल रहा है?"

राजेंद्र—"ऊँचा।"

'जय रामजी' करके राजेंद्र चल दिए। वह नहीं चाहते थे कि उनसे कोई ज़्यादा मेल-जोल बढ़ावे। क्योंकि वह कभी खद्दर का कुर्ता, नेहरू-जाकट, गांधी-कैप और मोटी खद्दर की धोती पहने, हाथ

में खद्दर का, 'जय हिंद' छाप का, झोला लटकाए, चप्पल पहने चुपचाप निकल जाते थे, तो दूसरे दिन शेरवानी, लखनौआ टुपल्ली टोपी, चूड़ीदार पाजामा, कामदार जूता पहनकर घूमने जाते थे। साहब से मिलने जाते, तो हैटेड, सूटेड, बूटेड होकर जाते थे। उनकी दशा तो उस व्यक्ति की तरह थी, जो—

अन्तः शाक्ता, बहिः शैवाः, सभामध्ये च वैष्णवाः ;
नानारूपधराः कौला विचरन्ति महीतले ।

भीतर से शाक्त, बाहर से शैव, सभा के बीच में वैष्णव, इस प्रकार नाना रूप धारण किए हुए वह पृथ्वी पर विचरते थे।

एक दिन सबेरे सात बजे शांती से कह गए कि शायद मैं दोपहर को कुछ देर से आऊँ। शांती ने दाल और शाक बनाकर रख लिया, और इस प्रतीक्षा में थी कि दारोग़ाजी आवें, तो रोटी बनाऊँ। बार-बार द्वार की ओर झाँकती थी। फिर 'शायद दोपहर को कुछ देर से आऊँ।' का स्मरण करके थोड़ी देर के लिये द्वार की ओर झाँकना बंद कर देती थी। अब की बार एक भिखारिन बोली—"मैया! कुछ मिल जाय।" फटे चीथड़े पहने, छोटे-से बच्चे को गोद में दबाए वह भीख माँगर ही थी। शांती ने शाम की बची हुई एक पूरी उसे दे दी। "बाल-गोपालों से गोद भरी रहे।" कहती हुई भिखारिन निकल गई। बारह बज चुके हैं, पर दारोग़ाजी नहीं लौटे। अब शांती बार-बार दरवाज़े की ओर देखती है। एक बज गया, तो भी न आए। अब कुछ चिंता हुई। न-जाने कहाँ भूखे-प्यासे घूमते होंगे। इतने में दरवाज़े की दालान में जटा-जूटधारी एक बाबाजी ने आवाज़ दी—"दाता के नाम पर कुछ खाने को मिल जाय।"

शांती ने बाबाजी से कहा—"बाबाजी! घर के आदमी बाहर गए हैं। खाना अभी बनाया नहीं है, थोड़ी देर बाद बनाऊँगी।"

साधु बोला—"तो दो रोटियों के लिये मैं यहाँ बैठा रहूँगा, या फिर आऊँगा ? जो हो, वही मिल जाय।"

शांती उठी, और भीतर से एक दोने में दो लड्डू लेकर आई। देखा, तो बाबाजी नदारद ! लौटने को हुई, तो बैठक में कुछ खट-पट मालूम हुई। घूमकर देखा, दालानवाले किवाड़ खुले हैं। "हाय ! चोर घुस आया।" कहकर झपटी। बैठक में पहुँचकर देखा, बाबाजी जटा-जूट और रँगी हुई अलफ़ी उतार चुके हैं। अब रिवाल्वर निकालकर अलमारी में रख रहे हैं। शांती ने आश्चर्य से चेहरे की ओर देखा, तो दारोग़ाजी ने हँसकर कहा—"जल्दी चलो, भूख लगी है।"

शांती ने कहा—"आज तो आपने मुझे भयभीत कर दिया। पहले तो मैं पहचान न सकी। फिर यह जानकर कि कमरे में कोई घुसा है, भय लगा। पर आपको देखकर डर भाग गया।"

एक दिन शाम के वक़्त एक चपरासी एक लिफ़ाफ़ा लेकर आया। खोलकर पढ़ा—"अभी सात बजे की ट्रेन से इलाहाबाद चलना है। तैयार होकर फ़ौरन् आओ।" उलटा-सीधा खाना खाकर, कपड़े पहनकर साहब के बँगले पर पहुँचे। कॉर बिलकुल तैयार थी। दोनो व्यक्ति सवार होकर स्टेशन चले। मार्ग में साहब ने बताया—"एक डाकू लूट का माल लिए इसी गाड़ी से हाथरस से आ रहा है। पढ़ा-लिखा, बहुत होशियार है। उसे पकड़ना है। वह प्रयाग जा रहा है।" एक टिकट इंटर क्लास का और दूसरा सेकंड क्लास का लिया। साहब सेकंड क्लास में बैठे। एक सेठजी मारवाड़ी पगड़ी बाँधे, दुशाला ओढ़े एक बर्थ पर यात्रा कर रहे थे। साहब ने दूसरी बर्थ पर आसन जमाया। कानपुर में ही दारोग़ाजी ने सारी गाड़ी पर दृष्टि डाली, पर कोई आदमी उस बताए हुए डाकू-जैसा न निकला। विवश हो इंटर क्लास में आ

बैठे। बड़े ध्यान से एक-एक यात्री को देखा। उनसे बातचीत की। कौन कहाँ जायगा, इसकी भी पूछ-ताछ की, पर किसी पर कोई संदेह ठीक न बैठा। साहब के पास फ़तेहपुर में आकर देखा। सेठजी और साहब बस, ये ही दो आदमी सेकंड क्लास में थे। दारोग़ाजी ने सेठजी से पूछा—"कहाँ जाइएगा?"

सेठ—"काशी।"

दारोग़ाजी—"गंगा नहाने?"

सेठ—"हाँ।"

दारोग़ाजी—"घर कहाँ है?"

सेठ—"आगरा।"

दारोग़ाजी—"क्या काम करते हैं?"

सेठ—"सोने-चाँदी की दूकान है।"

दारोग़ाजी ने अँगरेज़ी में साहब को सब कुछ बता दिया, क्योंकि सेठजी को उनकी बातों में कोई दिलचस्पी न थी, वह तो पैसे के बल से सेकंड क्लास में बैठे थे। इलाहाबाद पहुँचकर राजेंद्रसिंह और साहब, दोनो ने गाड़ी की खोज-बीन की, पर उस डाकू का पता न लगा। जब सेकंड क्लास के डिब्बे में आए, तो गाड़ी ने सीटी दे दी। दौड़कर गए, तो देखा, सेठजी काशी के बदले प्रयाग में ही गंगा-स्नान करने को उतर गए हैं। साहब तो गाड़ी पर बैठ गए, पर राजेंद्रसिंह "आसामी की खोज में जाता हूँ।" कहकर कूद पड़े। बड़ी पूछ-ताछ के बाद पता चला कि एक काले घोड़े के तेज़ ताँगे पर सवार होकर सेठजी कहीं गए हैं। काले घोड़े के ताँगे छानते-छानते पता चला। उसी होटल में स्वयं भी जा पहुँचे। सेठजी अब पंजाबी वेश में, बड़ा-सा साफ़ा बाँधे, ओपेन कॉलर का कोट डाटे, खाना खा-पीकर बाज़ार को चले। एक बक्स साथ था। राजेंद्र ने दूसरा ताँगा करके सेठजी का पीछा किया।

सेठ ने बाज़ार में सोने के आभूषण बेचे। राजेंद्रसिंह कोतवाली से मदद लाए, और चुपचाप धर्मशाले में आ डटे। रात को आठ बजे सेठजी लौटे। अभी कपड़े भी न उतार पाए थे कि चार आदमियों के साथ राजेंद्रसिंह ने घेर लिया। जामा-तलाशी और ख़ाना-तलाशी ली। सत्रह हज़ार रुपए के नोट और बहुत-सा सोने का सामान निकला। बक्स में एक पुराने ढंग का रिवाल्वर भी बरामद हुआ। राजेंद्रसिंह ने सेठजी को गिरफ़्तार करके वहाँ की पुलिस के हवाले किया, और रिपोर्ट लिखाकर कानपुर चले आए।

साहब से सारी घटना वर्णन की। साहब बहुत ख़ुश हुए, और समय आने पर इसका बदला देने की बात कही। सेठजी का सारा सामान ज़ब्त कर लिया गया, और उन्हें सात वर्ष के लिये बड़े घर भेज दिया गया।

फ़र्रुख़ाबाद के एक डिप्टी कलेक्टर की रिश्वत लेने की शिकायत हुई। कांग्रेस गवर्नमेंट थी, उसने सी० आई० डी० के सिपुर्द यह काम किया। साहब ने राजेंद्रसिंह को यह काम देकर कहा—"सचाई और ईमानदारी से मुजरिम को फाँसने में ही तुम्हारी तारीफ़ है।"

राजेंद्रसिंह चुपचाप बी० बी० एंड सी० आई० रेलवे से फ़तेहगढ़ आए। धर्मशाले में डेरा जमाया, और एक मुक़द्दमेवाले को लेकर वकील के पास पहुँचे। वकील ने कहा—"वह डिप्टी कलेक्टर रिश्वत लेता है। आपका मुक़द्दमा तब कामयाब होगा, जब आप कुछ ख़र्च करें।"

दारोग़ाजी ने मुक़द्दमेवाले से कहा—"भाई, हम तुम्हारे मुक़द्दमे की सारी पैरवी करा देंगे, पर हमें दस रुपए और ख़ुराक देना। मुक़द्दमा जीत जाओगे।"

मुक़द्दमेवाले ने सोचा—अच्छा है। दस रुपया कौन बड़ी बात है। उसने दस रुपया देना स्वीकार कर लिया।

राजेंद्रसिंह देहाती बनकर डिप्टी कलेक्टर के यहाँ पहुँचे। डिप्टी कलेक्टर बहुत चतुर था। उसने इधर-उधर की बातचीत करके अपने एक संबंधी से बात करने को कहा। संबंधी इसी काम के लिये डिप्टी साहब के पास रहते थे। रिश्वत ठहराते, और रुपए लेकर डिप्टी साहब को देते। ख़ुद चैन की वंशी बजाते, और डिप्टी साहब की श्रीमती एक-से-एक बढ़कर आभूषणों से सुसज्जित होती जाती थीं।

उस संबंधी ने ढाई सौ से बात शुरू की। होते-होते एक सौ बीस पर मुआमिला तय हो गया। राजेंद्रसिंह को यह फ़िक्र हुई कि संबंधी महाशय जिस समय न हों, तभी डिप्टी साहब को रुपए देने चाहिए। दूसरे दिन संबंधी महाशय फ़र्रुख़ाबाद सामान ख़रीदने तीसरे पहर डिप्टी साहब की कॉर से गए। राजेंद्रसिंह तो ताक में थे ही। फ़ौरन् कलेक्टर से एक सौ रुपए के नोट पर और दो दस-दस रुपए के नोटों पर दस्तख़त करा लाए, और डी० एस्० पी० तथा एक थानेदार के साथ डिप्टी साहब के बँगले पर पहुँचे। डी० एस्० पी० और थानेदार फुलवारी के पीछे छिप रहे। राजेंद्रसिंह ने पहले डिप्टी साहब से दुआ-सलाम की, फिर उन संबंधी के बारे में पूछा। डिप्टी साहब ने कहा—"वह बाज़ार गए हैं। शाम को आएँगे, तब मिल लीजिएगा।"

राजेंद्रसिंह ने कहा—"मैं घर जा रहा हूँ, क्योंकि एक मौत हो गई है। अभी ख़बर आई है, इसीलिये भागा आया कि मुक़दमे की तारीख़ परसों है। मैं शायद आ न सकूँगा, इसलिये आप अपनी चीज़ लीजिए।"

इतना कहकर तीनो नोट डिप्टी साहब को दे दिए। डिप्टी साहब ने कहा—"उन्हीं को देते, वही ठीक रहेंगे।"

राजेंद्रसिंह ने कहा—"मैं अभी कह चुका कि मौत हो गई है, इसलिये तुरंत ही जा रहा हूँ।"

डिप्टी साहब ने नोट जेब में रख लिए। राजेंद्रसिंह सलाम करके बाहर आए। संकेत पाते ही थानेदार और डी० एस्० पी० ने डिप्टी साहब को घेर लिया, और कहा—"आपके पास तीन नोट ऐसे हैं, जिन पर डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट के दस्तख़त हैं।"

डिप्टी कलेक्टर था चलता-पुर्ज़ा, दोनो हाथ जेब में डालकर बोला—"होश की दवा कीजिए। आपका दिमाग़ है कहाँ?"

डी० एस्० पी० ने एक हाथ पकड़ा, और दारोग़ाजी ने दूसरा। डिप्टी कलेक्टर ने झटका देकर बरामदे के मार्ग से भागना चाहा, पर दरवाज़े पर राजेंद्रसिंह मौजूद थे, पकड़ लिया। इधर डी० एस्० पी० और थानेदार भी यमदूत की भाँति पीछे ही लगे थे। पकड़कर जामा-तलाशी ली। तीनो नोट निकले! डिप्टी साहब को अपनी कार में बिठाकर डी० एस्० पी०, थानेदार और राजेंद्रसिंह चले। कलेक्टर के सिपुर्द करके सारा हाल बता दिया। राजेंद्रसिंह कानपुर लौट आए। उनके साहब बहुत ख़ुश हुए, और वह डी० एस्० पी० बना दिए गए।

शांती ने पूछा—"इतने दिन कहाँ लगाए?"

दारोग़ाजी—"काम से गया था।"

शांती—"कहाँ?"

दारोग़ाजी—"यह नहीं बताया जाता।"

शांती—"तो मुझसे भी छिपाव रक्खा जाता है?"

दारोग़ाजी—"केवल सरकारी काम का।"

शांती—"मुझे डर लगता है।"

दारोग़ाजी—"किस बात का?"

शांती—"इसी छिपाव का कि कहीं आप फिर···।"

दारोग़ाजी—"राम-राम ऐसी बात मत सोचो। अब तो मैं तुम्हें आँखों में बिठाऊँगा।"

शांती—"मैं जानती हूँ, मेरे ऊपर आवश्यकता से अधिक आपकी कृपा है, फिर भी···।"

"दारोग़ाजी—"फिर भी क्या ? पुरानी बातों की याद दिला रही हो ?"

शांती—"उन दिनों आपको क्या हो गया था ?"

दारोग़ाजी—"नादानी का भूत सवार था।"

शांती—"मैं आज की अपेक्षा तब कम सुंदरी थी ?"

दारोग़ाजी—"मेरी नादानी का प्रश्न था, न कि तुम्हारी सुंदरता का।"

शांती—"अब आप इतने कृपालु कैसे हो गए ?"

दारोग़ाजी—"देवी ! तुम्हारे तप और त्याग ने मेरे कलुष को धो दिया। अब तो जो होना था, हो गया पर उसका प्रायश्चित्त यही है कि जीवन-भर तुम्हें देवी मानकर पूजा करूँ।"

शांती—"कोई दूसरी सुंदरी आँखों में थी ?"

दारोग़ाजी—"देवी ! सब कुछ कहो, पर यह न कहो। मैंने तुम पर भाँति-भाँति के अत्याचार किए, प्रजा को ख़ूब सताया, झूठ को सच बनाया, रिश्वत ली, गालियाँ बकीं, पर किसी पर-स्त्री का अंग-स्पर्श नहीं किया। और, यह किया होता, तो शायद···।"

शांती—"मुझे शांती समझकर दूसरा ब्याह कैसे कर लिया ?"

दारोग़ाजी—"मैं उन दिनों अपने पापों को भोग रहा था, घोर शारीरिक कष्ट था, मानसिक चिंताएँ भी कम न थीं। ऐसे समय तुम्हारी सेवा ने मेरे मन पर बलात् अधिकार जमा लिया। मैं तुम्हें तो भूल ही चुका था। यदि मेरे मन में तुम्हारे प्रति दुर्भाव होता, तो पहचानने पर तुम्हारा तिरस्कार करता। पर उलटा मैं आनंदित हुआ, और तब से जो मेरा व्यवहार है, वही मेरे हृदय का साक्षी

है। यह जो कुछ प्रभु ने दिया है, उस सबका श्रेय तुमको है, और तुम्हें पाने का श्रेय डॉक्टर गोपालजी को है।

सबसे तुम अच्छी हो, तुमसे मेरी क़िस्मत अच्छी;
यही कमबख़्त दिखा देती है सूरत अच्छी।"

× × ×

डॉक्टर जागेश्वरी को एक पत्र कानपुर से मिला। उसमें लिखा था—

"श्रीमती बहनजी,

सादर वंदे।

सबसे पहले आपके उपकारों के लिये धन्यवाद देकर आगे बढ़ूँ। समाचार-पत्रों में आपकी पार्टी की सेवा की प्रशंसा में जो लेख निकले, उन्हें पढ़कर गद्‌गद हो गई। भगवान् करे, भारत-माता के ऐसे ही सुयोग्य पुत्र जन्म लेकर उसकी बेड़ियाँ काटने में समर्थ हों। मैं आपके चरणों के आशीर्वाद से परम प्रसन्न हूँ। एक नई बात हुई है। घर में एक नई मूर्ति ने दर्शन दिए हैं, जो सोलहो आना दारोग़ाजी का प्रतिनिधित्व करती है। वह आप सबके चरणों की धूलि सिर पर रखना चाहती है, और इस कार्य के लिये ता०.....नियत है। पधारकर इस गृह को पवित्र कीजिए।

मैं इसी कार्य के लिये शफ़ाख़ाने भेजी गई थी। वहाँ नर्सों को देखकर एक बात का स्मरण हो आया। ये बेचारी नर्सें थोड़े-से चाँदी के टुकड़े इस सेवा के बदले पाएँगी, पर मैंने नर्स बनकर वह पाया, जिससे ज़्यादा शायद मिल नहीं सकता। कोई दे नहीं सकता। और, आप ही ने मुझे नर्स बनाया था। अतः मेरा श्र

आपके चरणों पर श्रद्धा-सहित समर्पित करती हूँ। माताजी को प्रणाम। डॉक्टर साहब को जय हिंद।

विनीता—
शांती"

पत्र पढ़कर जागेश्वरी माजी के पास गई, और कहा—"माजी, शांती के लड़का हुआ है।"

माजी ने कहा—"भगवान् चिरजीवी करें।"

जागेश्वरी ने कहा—"बुलाया है।"

माजी ने कहा—"गोपाल चला जायगा। तू अब कहीं जाने योग्य नहीं है। दिन पूरे हो रहे हैं। तेरी देख-रेख की बड़ी ज़रूरत है। मैं पौत्र का मुँह देख लूँ, फिर मुझे इस संसार में कोई कामना न रह जायगी।"

कुछ श्रेष्ठ उपन्यास

गढ़-कुंडार

[उपन्यास, षष्ठावृत्ति]

लेखक, हिंदी के सर वाल्टर स्कॉट श्रीवृंदावनलाल वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी०। यह उपन्यास सम्राट् हर्षवर्द्धन की मृत्यु के बाद भारत के इतिहास के निर्माता चंदेलों, पँवारों, पड़िहारों और खंगारों के पारस्परिक संघर्ष से ओत-प्रोत, मध्यकालीन भारत की राजनीतिक चालों से भरा हुआ आल्हा-ऊदल की जन्म भूमि बुंदेलखंड का एकमात्र ऐतिहासिक उपन्यास है। वीरत्वमय, दिल दहला देनेवाला, मनोरंजक, मौलिक उपन्यास अब तक हिंदी-साहित्य में एक भी नहीं है।

इसमें बुंदेलखंड के वीरों का इतिहास, छत्रसाल की इतिहास-प्रसिद्ध जन्म-भूमि की मनोमोहक सीनरी तथा सरल चंदेल और खंगार-युवतियों की प्रेम-लीला, देश-प्रेम, वीरता इत्यादि सब आदि से अंत तक नया ही-नया है। लेखक को नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा इस पर २००) का पुरस्कार भी मिल चुका है। गेट-अप सुंदर है। मूल्य ६)

कोहनूर कंपनी में डाका

[जासूसी उपन्यास]

लेखक, श्रीप्रह्लादनारायण भार्गव बी० ए०। आप जासूसी उपन्यास

लिखने में सिद्धहस्त हैं। आपकी इस उपन्यास की घटनाएँ इतनी मनोरंजक हैं कि पुस्तक हाथ में लेने पर खत्म किए बिना छोड़ने को जी नहीं चाहता। भाषा भाव अत्यंत सरल है। चरित्र-चित्रण जिस सुंदरता से किया गया है, उसे देखकर आप मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकेंगे। हिंदी-साहित्य में अच्छे जासूसी उपन्यासों की भारी कमी है, जो हैं, अनुवाद ही हैं। इसी पूर्ति के निमित्त हम यदा-कदा जासूसी उपन्यास अपने हिंदी प्रेमी पाठकों को देते रहने का प्रयत्न कर रहे हैं। मूल्य २॥)

उदयन

[ऐतिहासिक उपन्यास]

हमारे प्रौढ़ लेखक पं० शुकदेवविहारीजी मिश्र की लेखनी से पाठकगण भली भाँति परिचित हैं। उन्हीं की ओजस्विनी लेखनी द्वारा इस अमूल्य उपन्यास की रचना की गई है।

कौशांबी के राजवंशीय नरेश उदयन इस उपन्यास के नायक हैं। सम्राट् उदयन का जन्म, उनका लालन-पालन, उनकी वीरता और शासन-व्यवस्था आदि का वर्णन बड़ा ही हृदयग्राही, रोचक एवं शिक्षाप्रद है।

सदियों पहले भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रहन-सहन, चाल-चलन, उनकी मनोरंजन-सामग्रियों आदि का रसास्वादन करना हो, तो इस उपन्यास को अवश्य पढ़ें।

भाषा मुहाविरेदार, सुंदर वर्णनात्मक ढंग की है। मिश्रजी की भाषा आदि के बारे में ज़्यादा लिखना सूर्य को दीपक दिखाना ही होगा। सुंदर आवरण से सुसज्जित। मूल्य ४॥)

रक्षा

[उपन्यास, द्वितीयावृत्ति]

लेखक, पं० गोविंदवल्लभ पंत। आपकी रचना के विषय में कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाना है। प्रस्तुत उपन्यास शिक्षाप्रद एवं मनोरंजक है। इसकी भाषा सरल, सजीव तथा ओजस्विनी है। नया टाइप, गेटअप सुंदर। सजिल्द पुस्तक का मूल्य ३॥)

अमृतकन्या

[सामाजिक और राजनीतिक उपन्यास]

लेखक, श्रीअज्ञात एम्० ए०। १५ अगस्त, १९४७ के ६ महीने पूर्व के उस समूचे राजनीतिक वातावरण को, जो सांप्रदायिक विभीषिकाओं, रोमांचकारी बर्बरताओं और सामूहिक नर-संहार के नग्न तांडव की प्रतिकूल विद्युत्-धाराओं से प्रदीप्त हो उठा था, मर्मस्पर्शी कथा-सूत्र में बाँधकर इस उपन्यास द्वारा भारतीय स्वातंत्र्य के इतिहास में एक ऐसा अध्याय जोड़ने का प्रयास किया है, जिसे हम आज भूलने-से लगे हैं। भाषा सरस, और ओज-पूर्ण है। मूल्य ५)

हिंदुस्थान-भर की हिंदी-पुस्तकें मिलने का पता—
गंगा-ग्रंथागार, ३६, गौतमबुद्ध-मार्ग,
लखनऊ